वार्षिक रु. १३०, मूल्य रु. १५

विवेक ज्योति

वर्ष ५६ अंक ७ जुलाई २०१८

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

छात्रावस्था में स्वामी विवेकानन्द

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

जुलाई २०१८

वर्ष ५६
अंक ७

वार्षिक १३०/– **एक प्रति १५/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–
१० वर्षों के लिए – रु. १३००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ४० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षो के लिए २०० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १७०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ८५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

'छात्रावस्था में स्वामी विवेकानन्द' इसका विस्तृत विवरण सम्पादकीय लेख में उपलब्ध है।

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्रीमती रंजना बी. प्रसाद, थातीपुर, ग्वालियर (म.प्र.)	१०००/-
श्री राजाराम पाण्डेय, स्टेडियम रोड, बीकानेर (राज.)	२१००/-
श्रीमती इन्दु तिवारी, ६२७,सुन्दर नगर, रायपुर (छ.ग.)	११००/-

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है । विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है । आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें । विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है । **२.** रचना बहुत लम्बी न हो । पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय । पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो । आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं । **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें । **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें । अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें । **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा । न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा। **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें । यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें ।

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
४८७. श्री नुनिया राम मास्टर, चंडीगढ़	डिस्ट्रीक्ट इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन, फरीदाबाद (हरियाणा)
४८८. ,, ,,	डिस्ट्रीक्ट इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन, मतान फतेहाबाद (हरि.)
४८९. ,, ,,	डिस्ट्रीक्ट इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन, शाहपुर, करनाल (हरि.)
४९०. श्री आशीष कुमार बॅनर्जी, शंकर नगर, रायपुर	शिपाझार कॉलेज, मु./पो. शिपाझार, जिला - दरांग (असम)
४९१	संस्कृत महाविद्यालय, ग्रा.पो.-मण्डल, जिला - चमोली (उ.ख.)
४९२.	राजकीय इंटर कॉलेज, ग्रा./पो. बैरागना, वाया-गोपेश्वर, चमोली
४९३.	राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्रा./पो.-गोपेश्वर, जि.चमोली
४९४.	राजकीय इंटर कॉलेज (जीआईसी) ग्रा./पो.-गोपेश्वर, जि.चमोली
४९५.	आदर्श विद्या मंदिर, ग्रा./पो.-कोठियाल सैण, जि.चमोली (उ.ख.)
४९६. सुश्री स्नेहा आसोपा, टोंक (राजस्थान)	शारदा मंदिर, पो. वनस्थली विद्यापीठ, जि. टोंक (राजस्थान)
४९७. श्री अनुराग,स्व. श्रीरामराज,स्व. श्रीमती उषा प्रसाद, कोलकाता	शा. अग्रसेन महाविद्यालय, मु./पो.-बिल्हा, बिलासपुर (छ.ग.)
४९८. ,, ,,	एम.सी. कॉलेज, बरपेटा (असम)
४९९. ,, ,,	शास. लालबहादुर शास्त्री कॉलेज. मु./पो.-सिरोंज, विदिशा (म.प्र.)
५००. ,, ,,	गवर्नमेंट कॉलेज, गोविन्दगढ़, अलवर (राज.)
५०१. ,, ,,	मालवा कॉलेज ऑफ फार्मेसी, बठिण्डा, डियोन (पंजाब)

वर्ष ५६ जुलाई २०१८ अंक ७

गुरु-स्तोत्रम्

सर्वश्रुतिशिरोरत्न - समुद्भासितमूर्तये।
वेदान्ताम्बुजसूर्याय तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

शोषणं भवसिन्धोश्च प्रापणं सारसम्पदः।
यस्य पादोदकं सम्यक् तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

न गुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः।
तत्त्वज्ञानात्परं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरुः श्रीजगद्गुरुः।
मदात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

गुरुरादिरनादिश्च गुरुः परमदैवतम्।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

पुरखों की थाती

बालस्यापि रवेः पादाः पतन्त्युपरि भूभृताम्।
तेजसा सह जातानां वयः कुत्रोपयुज्यते।।६०५।।

– जैसे उदय होता हुआ सूर्य पर्वतों के ऊपर अपने चरण रखकर उतरता है, वैसे ही तेज के साथ जन्म लेनेवाले लोगों के लिये आयु का उनके तेज के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता।

सर्वत्र देशे गुणवान् शोभते प्रथितः नरः।
मणिः शीर्शे गले बाहौ यत्र कुत्रापि शोभते।।६०६।।

– जैसे मणि को सिर पर, बाँह पर या किसी भी अन्य अंग पर धारण किया जाय, वह शोभयमान ही होती है; वैसे ही गुणवान व्यक्ति चाहे किसी भी स्थान पर क्यों न रहे, वह वहीं सुशोभित होता है।

साहित्य-सङ्गीत-कला-विहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानः
तद्भागधेयं परमंपशूनाम्।।६०७।।

– जो व्यक्ति साहित्य, संगीत और कला में रसबोध नहीं रखता, वह मानो पूँछ तथा सींगों से रहित साक्षात् पशु है। पशुओं का यह परम सौभाग्य है कि ऐसा मनुष्य बिना घास खाये भी जीवित रह लेता है (अन्यथा पशुओं के लिये उदर-पूर्ति कठिन हो जाती)।

विविध भजन

महिमा गावें रामकृष्ण भगवान की

स्वामी रामतत्त्वानन्द

आओ भक्तों महिमा गावें रामकृष्ण भगवान की।
जीव में शिव बोध करावे बोध करावे ज्ञान की।।
गयाधाम से आयो गदाई, कामारपुकुर ग्राम में,
खेल-खेल में ध्यान लगावे, काली शिव के नाम में।
अमराई में गली-गली में गुण गावे भगवान की।।
आओ भक्तों महिमा गावें रामकृष्ण ...
बन पुजारी दक्षिणेश्वर आयो काली धाम में,
सब साधन का फल बतलावे निज स्वरूप विश्राम में।
भक्तों के घर जा-जाकर के गुण गावें भगवान की।।
आओ भक्तों महिमा गावें रामकृष्ण ...
माँ सारदा की पूजा करके जग की शक्ति जगा गये,
माँ की ममता की छाया को सबके सर बिछा गये।
उस छाया में आओ बैठें, गुण गावे भगवान की।।
आओ भक्तों महिमा गावें रामकृष्ण ...
संग में लाकर स्वामीजी को त्याग सेवा सिखा गये,
अमृत सागर में डूबने की सबको राह दिखा गये।
आओ मिलजुल काम करें, सब गीत गावें कल्याण की।।
आओ भक्तों महिमा गावें रामकृष्ण ...

गुरुभक्ति बिन कछु ना बने।

महर्षि मेंही

सुखमन के झीना नाल से अमृत की धारा बहि रही।
मीन सूरत धार धर भाठा से सीरा चढ़ि रही।।
गुरु-मन्त्र जप गुरु-ध्यान कर गुरु-सेव कर अति प्रीति कर।
गुरु की आज्ञा मान प्यारे कर सदा गुरु की कही।।
उस नाल का झीना दुआरा गुरु तुझे देंगे बता।
दोउ नैन नासा मध्य सन्मुख सूई अग्र दर ले लही।।
तम फटे जोती भरे आकाश का तू सैर कर।
शब्द अनहत सार में मिल लह ले सतपद को सही।।
दुख-दर्द भव के सब मिटैं सतगुरु चरण नित सेइये।
गुरु-भक्ति बिन कछु ना बने 'मेंही' सकल सन्तन कही।।

गुरु मूरति मन में बसे

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

गुरु मूरति मन में बसे सफल होय साधन भजन।
पढ़िये श्रद्धा सहित नित श्रीअविनाशी स्तवन।।
जय गुरुदेव दयानिधि स्वामी।
श्रीअविनाशी राम नमामि।।
तप:पूत मन सहज सुहावन।
शोभित उदित भानु सम आनन।।
उन्नत भाव त्रिपुण्ड विराजै।
केशराशि शोभा शुभ साजै।।
कृपा भाव पूरित जुग लोचन।
वाणि ज्ञानमय भव भय मोचन।।
गैरिक वसन असन साधारण।
योगी प्राणायाम परायण।।
आसन सिद्ध समाधि अवस्था।
प्राप्त सहज संकल्प व्यवस्था।।
ब्रह्मचर्य व्रत रत अवतारी।
कटि कौपीन कमंडलुधारी।।
विप्रवंश अवतंश यतीश्वर।
दीनदयालु प्रणत आरति हर।।
ब्रह्मानन्द लीन विग्यानी।
श्रीमद्‌भागवत गीता ज्ञानी।।
शंकर मत वेदान्त प्रचारक।
रामनाम के पूर्ण प्रचारक।।
धर्मयुक्त व्यवहारिक नीती।
हेतु रहित सबही सन प्रीती।।
अशरण शरण दीन हितकारी।
सरल संयमी पर उपकारी।।
जो कोई शरण आपकी आवे।
आत्मबोध लै निज पर पावें।।
ऐसे परम कृपालु की शरण लहै जो कोय।
सहज मिटे मन मलीनता जीवन उज्ज्वल होय।।
भव वारिध हित बनि गयो, बोहित जिनको ज्ञान।
वन्दनीय राजेश के श्रीसद्‌गुरु भगवान।।

छात्रावस्था में स्वामी विवेकानन्द

बचपन से ही सुनता चला आ रहा हूँ – 'छात्र-जीवन स्वर्णिम जीवन है।' छात्र-काल सुनहरा जीवन-काल है, जिसमें छात्र अपनी औपचारिक शिक्षा के साथ-साथ अपने जीवन का सर्वांगीण विकास करता है। अपने घर-परिवार की सीमाओं से बाहर निकलकर समाज से जुड़ता है। अपने साथियों के साथ रहकर उनके सुख-दुख का अनुभव करता है। सामाजिक संवेदनाओं से संवेदनशील होता है। समाज के साथ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करता है। अपना चतुर्मुखी विकास, अपने सम्यक् व्यक्तित्व का विकास कर समाज, राष्ट्र और विश्व की सेवा के योग्य बनता है।

अनेक महापुरुषों में देखा जाता है कि वे अपनी छात्रावस्था से ही बड़े मेधावी, तेजस्वी, नैतिक और समाज-सेवी थे। उनलोगों ने छात्रावस्था में अपने जीवन का महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया और उसके योग्य अपने चरित्र का निर्माण और व्यक्तित्व का विकास कर वे समाज के लिये उपयोगी बने। मुझे स्मरण हो रहा है, रामकृष्ण मिशन, कटिहार के छात्रावासीय दो लड़के कक्षा छठवीं से ही एक चिकित्सक और दूसरा अभियन्ता बनने को कहते थे। सौभाग्य से वे दोनों आज प्रसिद्ध चिकित्सक और अभियन्ता हैं।

स्वामी विवेकानन्द की छात्रावस्था भी विलक्षण थी ! वे बचपन से ही सत्यवादी, तीक्ष्ण बुद्धिवाले, मेधावी, नायक और परोपकारी थे। उनकी शिक्षा कोलकाता और छत्तीसगढ़ के रायपुर में हुई थी। छात्रावास्था से ही उनके सर्वांगीण विकसित व्यक्तित्व की झलक मिलती है। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनकी प्रतिभा से आकर्षित होकर प्राचार्य विलियम हेस्टी साहब ने कहा था, "नरेन्द्रनाथ दत्त सचमुच ही एक प्रतिभाशाली बालक है। मैंने अनके स्थानों का भ्रमण किया है, किन्तु ऐसे किसी भी दूसरे छात्र को नहीं देखा, यहाँ तक कि जर्मन विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र के छात्रों में भी नहीं। यह लड़का निश्चय ही संसार में एक चिह्न छोड़ कर जायेगा।"

अध्ययन और एकाग्रता – स्वामीजी की अध्ययन में रुचि रहती थी। वे किसी भी विषय को बड़ी एकाग्रता से सुनते थे और उसे कण्ठस्थ कर लेते थे। उन्होंने प्रारम्भ से ही अँग्रेजी के साथ-साथ इतिहास और संस्कृत भी सीखा था, जो उनकी आधुनिकता के साथ आध्यात्मिक रुचि और अपने देश की संस्कृति और सभ्यता के प्रति आकर्षण को इंगित करता है।

क्रीड़ा – वे अपने साथियों के साथ विभिन्न प्रकार के खेल खेलते और उसका नेतृत्व करते। मार्बेल, दौड़ादौड़ी, हल्ला-गुल्ला, कूदना, घूँसेबाजी आदि उनके सर्वाधिक प्रिय खेल थे।

व्यायाम – स्वामीजी का शरीर बड़ा सुगठित था। वे बचपन से व्यायाम करते थे। उन्होंने अपने परिसर में अखाड़ा बनाया था, जहाँ अपने मित्रों के साथ वे नियमित व्यायाम करते थे। वे लाठी भाँजना, तलवार चलाना, तैरना, घुड़सवारी करना, भोजन बनाने आदि में भी निपुण थे।

संगीत – स्वामीजी की बचपन से संगीत में रुचि थी। जब उनके यहाँ भिखारी गाना गाते हुये भिक्षा माँगने आते, तब वे बड़े प्रेम से उनके गीत सुनते थे। वे तानपुरा बजाते थे। वे तानपुरा बजाते हुये साथियों के साथ भजन-संगीत गाते। इसी संगीत के कारण ही उनकी भेंट श्रीरामकृष्ण देव से हुई थी। उन्होंने श्रीरामकृष्ण देव को भजन सुनाया था, – 'मन चलो निज निकेतने'। उन्होंने 'संगीत कल्पतरु' नामक पुस्तक का संकलन भी प्रकाशित किया था।

नाटक – वे हमेशा शुद्ध आनन्द के अन्वेषक थे। इसी क्रम में उन्होंने अपनी नाटक-मंडली बनायी थी। उन्होंने अपने भवन के पूजा-कक्ष के बरामदे में कई बार अभिनय भी किया था।

यात्रा – स्वामीजी अपने साथियों के साथ कभी छोटी-मोटी स्थानीय यात्रा भी करते थे। वे एकबार चाँदघाट से मटियाबुर्ज में लखनउ के नबाब वाजिद अली शाह का चिड़ियाघर देखने गये थे। वे सिरापिस नामक ड्रेडनट श्रेणी का एक विशाल युद्धपोत देखने कोलकाता बन्दरगाह भी गये थे। बाद में उन्होंने किला मैदान, दक्षिणेश्वर और बोधगया की यात्रा भी की थी।

साहसी और युक्तिवादी – स्वामी विवेकानन्द बचपन से ही बहुत साहसी और युक्तिवादी थे। इस सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख पर्याप्त है। स्वामीजी के सहपाठी के घर एक चम्पा का पेड़ था। वे उसकी डाली में पैर फँसाकर सिर नीचे कर प्रसन्नता से झूलते थे। एक दिन सहापाठी के वृद्ध दादाजी ने देखा कि इस प्रकार झूलने से पतली चम्पा की डाली टूट सकती है और नरेन्द्र घायल हो सकता है। इसलिये उन्होंने नरेन्द्र को उस पर झूलने से मना किया। स्वामीजी ने उनसे पूछा, क्यों उस पेड़ पर चढ़ने से क्या होगा? दादाजी

ने भय दिखाने के लिये कहा कि उस पर एक भयंकर पिशाच रहता है, जो उस पर चढ़ता है, उसकी गरदन मरोड़ देता है। दादाजी के जाने के बाद स्वामीजी पुनः उस पेड़ पर चढ़कर झूलने लगे। साथियों के मना करने पर उन्होंने हँसते हुये कहा, यदि इस पर पिशाच होता, तो कभी हमारी गरदन मरोड़ दिया होता।

सेवा – स्वामीजी में बचपन से सेवावृत्ति थी। उनके घर साधु और भिखारी कुछ प्राप्ति की आशा में आते रहते थे। एक दिन वे अपने साथियों के साथ खेल रहे थे, तभी 'नारायण हरि' की आवाज सुनाई दी। वे दौड़कर गये और अपने कमर में पहने हुए नव वस्त्र को उस याचक को दे दिया।

एक बार नवगोपाल बाबू के अखाड़े में कुछ मित्र मिलकर झूला खड़ा कर रहे थे। वहाँ बहुत से लोग खड़े थे। उसमें एक अँग्रेज नाविक था। स्वामीजी ने उस अँग्रेज को सहायता के लिये बुलाया। वह सहर्ष आया, किन्तु उसे बड़ी चोट लग गयी, सिर फूटकर रक्त बहने लगा और वह अचेत हो गया। डरकर सभी लोग भाग गये। किन्तु स्वामीजी ने अपने दो-तीन साथियों के साथ उसकी सेवा की। उसके मुँह पर पानी छींटा, अपनी धोती फाड़कर पट्टी बाँधी, चिकित्सक को बुलाया और सप्ताह भर सेवा कर उसे स्वस्थ कर, चन्दा जुटाकर उसकी सहायता की तथा उसे विदा किया।

स्वामीजी ने अपने सहपाठी हरिदास का विद्यालय-शुल्क प्रधानाध्यापक से कहकर माफ कराया था।

वर्ण-धर्मातिक्रमण और उदारता – वर्ण, धर्म के प्रति दुराग्रह स्वामीजी में बचपन से ही नहीं था। उनके पिता विश्वनाथ दत्त वकील थे। उनके एक मुसलमान मुअक्किल थे। वे नरेन्द्र को बहुत प्रेम करते थे। नरेन्द्र उन्हें चाचा कहते थे और उनसे विभिन्न प्रकार की कहानियाँ, यात्रा-वृत्तान्त आदि सुनते थे। कभी-कभी चाचा उन्हें खाने को मिठाई देते, तो नरेन्द्र बेझिझक प्रसन्नता से खा लेते। दूसरे लोग देखकर भले ही नाराज हों, किन्तु उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार उन्होंने धार्मिक रूढ़िवादिता को तोड़कर अपनी उदारचित्तता का परिचय दिया था।

इस सम्बन्ध में एक दूसरी घटना है। विश्वनाथ दत्त जी के यहाँ कई जातियों के लोग आते थे। इसलिये उन्होंने सबके लिये अलग-अलग हुक्के रखे थे। नरेन्द्रनाथ को बड़ी उत्कण्ठा थी कि सभी हुक्कों से पीने पर देखें क्या होता है? एक दिन नरेन्द्रनाथ को अवसर मिला। वे सभी हुक्कों में मुँह लगाकर देखने लगे, किन्तु हुआ तो कुछ नहीं। जब यह देखकर विश्वनाथ दत्त जी ने नरेन्द्रनाथ से पूछा कि क्या रहे हो? तो उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया, देख रहा हूँ कि जाति नहीं मानने पर क्या होता है? ऐसी स्वामीजी की विश्लेषण शक्ति थी !

स्वाभिमान – स्वामीजी बचपन से स्वाभिमानी थे। उनके ऊपर अनावश्यक आरोप लगाने पर वे उसे सहन नहीं करते थे।

नेतृत्व शक्ति – स्वामी विवेकानन्द में छात्रावस्था से ही नेतृत्व शक्ति परिलक्षित होती है। नायक वही बनता है, जिसमें दूसरों के लिये आत्मबलिदान करने की क्षमता हो। स्वामीजी स्वयं कहते थे, 'सिरदार तो सरदार'। ऐसा उनके जीवन के कई प्रसंगों से ज्ञात होता है।

एक बार वे अपने साथियों के साथ शिव-पूजनोत्सव देखने गये। वहाँ से मिट्टी से बने शिव की मूर्ति को खरीदकर वापस आ रहे थे। सन्ध्या का समय था। अँधेरा था। उनका कोई साथी पीछे छूट गया था। तभी एक घोड़ागाड़ी बड़ी तेजी से पीछे से आ रही थी। स्वामीजी ने देखा कि उनका साथी अब घोड़े के पैर के नीचे आनेवाला ही है। मार्ग के लोग चिल्लाने लगे। स्वामीजी ने अपने प्राणों को संकट में डालकर शिवमूर्ति को बगल में दबाकर दूसरे हाथ से तुरन्त साथी को खींचकर उसके प्राण बचा लिये।

ध्यानपरायण – स्वामी विवेकानन्द बचपन से ध्यानपरायण थे। बचपन से उन्होंने रामायण की कथाएँ सुनी थीं। एक बार उन्होंने बाजार से सीताराम की युगल मिट्टी की मूर्ति खरीदी और अपने घर की सीढ़ी के ऊपरी भाग में स्थापित किया। वे वहीं बैठकर अपने साथियों के साथ ध्यान करने लगे। वे ध्यान में इतने तन्मय हो गये कि बाह्य जगत का बोध ही नहीं रहा।

एक दूसरी घटना है। स्वामीजी अपने साथियों के साथ ध्यान कर रहे थे। ध्यान में वे तल्लीन हो गए। तभी एक लड़के ने देखा कि उस कक्ष में एक बहुत बड़ा विषैला साँप आ गया है। वह डरकर चिल्लाने लगा। सभी लड़के वहाँ से डरकर भाग गये। लेकिन स्वामीजी बैठे रहे। लड़के घर के लोगों को बुलाकर लाये। सब लोग वह दृश्य देखकर डर गये। थोड़ी देर बाद साँप स्वयं कहीं चला गया। स्वामीजी को पूछने पर उन्होंने कहा कि मुझे तो कुछ पता ही नहीं चला।

सत्य की खोज और हनुमत्-दर्शन की उत्कण्ठा – स्वामीजी सत्यान्वेषण और ईश्वरप्राप्ति के लिये कई महापुरुषों से मिले और अन्त में दक्षिणेश्वर में ही उनकी जिज्ञासाओं का स्थायी समाधान हुआ। एक बड़ी अच्छी घटना है। एक बार

शेष भाग पृष्ठ ३२३ पर

मुण्डक-उपनिषद् व्याख्या (१)

स्वामी विवेकानन्द

(१८९६ ई. के जनवरी में अमेरिका के न्यूयार्क नगर में स्वामीजी के 'ज्ञानयोग' विषयक व्याख्यानों की एक श्रृंखला का आयोजन किया गया था। २९ जनवरी को उन्होंने 'मुण्डक-उपनिषद्' पर चर्चा की थी। यह व्याख्यान उनके एक अंग्रेज शिष्य श्री जे. जे. गुडविन ने लिपिबद्ध कर रखा था। परवर्ती काल में इसे स्वामीजी की अंग्रेजी ग्रन्थावली के नवें खण्ड में संकलित तथा प्रकाशित किया गया। सैन फ्रांसिस्को की प्रव्राजिका गायत्रीप्राणा ने स्वामीजी के सम्पूर्ण वाङ्मय से इससे जुड़े हुए अन्य सन्दर्भों को इसके साथ संयोजित करके 'वेदान्त-केसरी' मासिक और बाद में कलकत्ते के 'अद्वैत-आश्रम' से ग्रन्थाकार में प्रकाशित कराया। 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने इसका अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करके इसे धारावाहिक रूप से प्रकाशन हेतु प्रस्तुत किया है – सं.)

प्रथम मुण्डक

प्रथम खण्ड

उपनिषद् शक्ति की विशाल खान है। इनमें सारी दुनिया को तेजस्वी बना देने की शक्ति विद्यमान है। इनके द्वारा पूरे संसार को सजीव, सबल तथा ऊर्जावान बनाया जा सकता है। ये उच्च स्वर में सभी जातियों, सभी मतों और सभी सम्प्रदायों के दुर्बल, दुखी और पददलित लोगों को अपने पैरों पर खड़े होकर मुक्ति पाने का आह्वान कर रही हैं। स्वाधीनता – दैहिक स्वाधीनता, मानसिक स्वाधीनता, आध्यात्मिक स्वाधीनता – ये ही उपनिषदों के मूलमंत्र हैं।[१]

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्या-प्रतिष्ठा-
मथर्वाय ज्येष्ठ-पुत्राय प्राह।।१.१.१।।

अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽ-
थर्वा तं पुरो-वाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्।
स भारद्वाजाय सत्यवहाय प्राह
भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम्।।१.१.२।।

ब्रह्माजी देवताओं में सर्वप्रथम थे, जो इस सृष्टि के निर्माता और रक्षक थे। उन्होंने अपने (बड़े) पुत्र अथर्वा को वह ब्रह्मज्ञान प्रदान किया, जो सम्पूर्ण ज्ञान का सार-स्वरूप है। उन्होंने इसे अपने पुत्र अंगिरस को दिया, जिन्होंने इसे अपने पुत्र भारद्वाज को दिया और इसी प्रकार आगे का क्रम चला।[२]

ब्रह्मा एक उच्च पद का नाम है और कोई भी जीव अपने पुण्यों द्वारा इन पदों को पाने की इच्छा कर सकता है।[३]

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं
विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ।
कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते
सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति।।१.१.३।।

शौनक नाम के एक बड़े धनाढ्य व्यक्ति थे। वे अंगिरस के पास शिक्षा पाने गये। उन्होंने आचार्य के पास पहुँचकर एक प्रश्न किया, "महाराज, मुझे बताइये कि वह कौन-सी वस्तु है, जिसे जान लेने पर बाकी सब कुछ ज्ञात हो जाता है।"[४]

आज की (वैज्ञानिक) भाषा में कहा जाय, तो चरम एकता के आविष्कार की चेष्टा ही उपनिषदों का उद्देश्य है। विभिन्नता में एकता की खोज ही ज्ञान है। प्रत्येक विज्ञान इसी नींव पर स्थापित है। समस्त मानवीय ज्ञान – विभिन्नता में एकता की खोज पर ही आधारित है। और, जब हमें ज्ञान (जिन्हें हम 'विज्ञान' कहते हैं) के छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटे, अद्भुत विविधतापूर्ण इस ब्रह्माण्ड में एकत्व की खोज करनी हो – जिसमें प्रत्येक विचार दूसरे विचारों से भिन्न हो और हर रूप दूसरे रूपों से भिन्न हो – ऐसे नामों तथा रूपों, पदार्थों तथा विचारों के भीतर एकत्व की खोज करनी हो – तब तो यह कार्य और भी विराट् हो जाता है। तथापि इन विभिन्न स्तरों और असीम ब्रह्माण्ड के भीतर फैली अनन्त विचित्रताओं के भीतर एकत्व को ढूँढ़ निकालना ही उपनिषदों का लक्ष्य है।[५]

हिन्दू मन की यह विशेषता है कि वह सदैव अन्तिम सम्भावित सामान्यीकरण की ही खोज करता है और बाद में विशेष पर कार्य करता है। हिन्दू मन 'विशेष' की परवाह नहीं करता; यह सर्वदा 'सामान्य' या सार्वभौमिक पर कार्य करता है। ... इसीलिये वेदों में यह प्रश्न उठाया गया है – 'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति – ऐसी कौन-सी वस्तु

१. विवेकानन्द साहित्य, सं. १९६३, खण्ड ५, पृ. १३३-३४
२. Complete Works of Swami Vivekananda, सं. २०११, खण्ड ९, पृ. २३५ (आगे केवल 'Complete Works' के रूप में उद्धृत)
३. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड १०, पृ. १५७
४. Complete Works, खण्ड ९, पृ. २३५
५. वही, खण्ड ५, पृ. २८९

है, जिसका ज्ञान होने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है?' इस प्रकार, हमारे जितने शास्त्र हैं, जितने दर्शन हैं, सभी इसी तत्त्व के निर्णय में लगे हुए हैं, जिसके जानने से सब कुछ जाना जा सकता है। ... यदि कोई व्यक्ति जगत् का तत्त्व थोड़ा-थोड़ा करके जानना चाहे, तो उसे अनन्त समय लग जायेगा; क्योंकि फिर तो उसे बालू के एक-एक कण तक को अलग-अलग जानना होगा। इस प्रकार सब कुछ जानना असम्भव है। तो फिर ज्ञानलाभ कैसे हो सकता है? एक-एक विषय को अलग-अलग रूप में जानकर मनुष्य के लिए सर्वज्ञ होने की सम्भावना कहाँ है? योगी कहते हैं कि इन समस्त विशिष्ट अभिव्यक्तियों के पीछे एक सामान्य – अमूर्त तत्त्व है। उसको पकड़ लेने या जान लेने पर, सब कुछ जाना जा सकता है।[६]

ज्ञान ही इस अद्‌भुत जगत् का द्वार खोलता है; ज्ञान ही पशु को देवता बनाता है और जो ज्ञान हमें उस ईश्वर के निकट पहुँचा देता है, 'जिसे जान लेने से सब कुछ ज्ञात हो जाता है' – जो अन्य सभी ज्ञानों (अपरा विद्या) का प्राण-स्वरूप है; जिसके स्पन्दन से समस्त भौतिक-विज्ञानों में प्राणसंचार हो जाता है; नि:सन्देह वह धर्म-विज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ है। धन्य है वह देश, जिसने उसे 'सर्वोच्च ज्ञान' (परा विद्या) का नाम दिया है।[७]

इस ब्रह्माण्ड में अद्‌भुत जैसा कुछ भी नहीं है। अज्ञान ही एकमात्र अन्धकार है। उसी से आवृत होने के कारण सब कुछ रहस्यमय प्रतीत होता है। जब सब कुछ ज्ञान के प्रकाश से आलोकित हो जाता है, तब हर वस्तु के ऊपर से रहस्य का परदा उठ जाता है। तब, यहाँ तक कि असम्भव को सम्भव दिखानेवाली (अघटन-घटन-पटीयसी) माया भी लुप्त हो जाती है। जिसको जानने से सब कुछ जाना जाता है; उसी को जानो और उसी का चिन्तन करो।[८]

उपनिषदों में उच्चतर अर्थात् परा और निम्नतर अर्थात् अपरा विद्या में भेद बतलाया गया है। भक्त के लिए परा विद्या और परा भक्ति दोनों में कोई भेद नहीं हैं।

तस्मै स होवाच। द्वे विद्ये वेदितव्ये
इति ह स्म यद्-ब्रह्मविदो वदन्ति,
परा चैवापरा च ।।१.१.४।।

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः
शिक्षा कल्पो व्याकरणं
निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा,
यया तदक्षरमधिगम्यते ।।१.१.५।।

ब्रह्मज्ञानी घोषित करते हैं कि दो प्रकार की विद्याएँ जानने योग्य हैं – परा और अपरा। इनमें से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा (उच्चारण-विद्या आदि), कल्प (यज्ञ-पद्धति), व्याकरण, निरुक्त (वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति और अर्थ बतानेवाला शास्त्र), छन्द और ज्योतिष आदि अपरा विद्या के अन्तर्गत आते हैं और परा विद्या वह है, जिसके द्वारा अक्षर ब्रह्म का ज्ञान होता है।

इस प्रकार पराविद्या स्पष्टत: ब्रह्मविद्या है।[९] वेद के जिन अंशों में यज्ञ आदि कर्मकाण्डों तथा अन्य सभी प्रकार के लौकिक विषयों पर प्रकाश डाला गया है, उसे अपरा विद्या कहते हैं और सारभूत या परा विद्या उसे कहते हैं, जिसके द्वारा परम तत्त्व तक पहुँचा जाता है।[१०]

तुम्हें अपने हृदय को खोल देना होगा। धर्म का अर्थ – न गिरजे में जाना है, न माथे पर तिलक लगाना है और न ही किसी विशेष प्रकार की वेशभूषा धारण करना है। भले ही तुम अपनी देह को इन्द्रधनुष के सभी रंगों से रँग डालो, परन्तु यदि तुम्हारा हृदय नहीं खुला है, यदि तुमने ईश्वर का दर्शन नहीं किया है, तो यह सब कुछ व्यर्थ है। जिसने हृदय को रँग लिया है, उसके लिए दूसरे किसी बाह्य रंग की जरूरत नहीं। यही सच्ची अनुभूति है।[११]

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि रंग तथा उपरोक्त सारी बातें – तभी तक उपयोगी हैं, जब तक कि वे हमें धर्ममार्ग में सहायता दें और तभी तक उनका स्वागत होना चाहिये। परन्तु प्राय: ये विकृत हो जाती हैं और सहायता की जगह अवरोध बन जाती हैं, क्योंकि लोग इन बाह्योपचारों को ही धर्म समझ बैठते हैं; और तब मन्दिर में जाना ही 'आध्यात्मिक जीवन' और पुरोहित को कुछ देना ही 'धार्मिक कृत्य' समझने लगते हैं। ये बातें बड़ी भयानक तथा हानिकारक हैं और इन्हें तत्काल रोकना आवश्यक है। हमारे शास्त्र बारम्बार घोषित करते हैं कि बाह्य इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान को 'धर्म' नहीं कहा जा सकता। (बल्कि) धर्म वह है, जिससे हमें कूटस्थ ब्रह्म की अनुभूति होती है और वही सार्वलौकिक धर्म है।[१२] **(क्रमशः)**

६. वहीं, खण्ड १, पृ. ५९-६०
७. वही, खण्ड ९, पृ. २६०
८. वही, खण्ड ६, पृ. ९८
९. वही, खण्ड ४, पृ. ६०
१०. वही, खण्ड ७, पृ. ५२
११. वही, खण्ड ५, पृ. १७६-७७
१२. वही, खण्ड ५, पृ. १७७
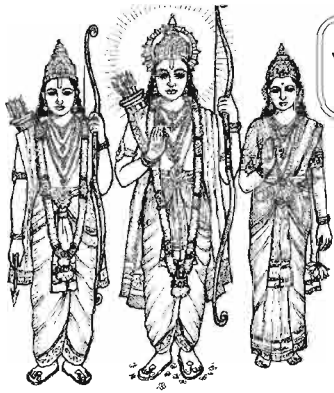
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (४/५)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्‌घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

चरित्र में और कथा में अन्तर है। चरित्र में घटनाएँ होती हैं कि ऐसा हुआ, ऐसा हुआ। कथा में घटनाएँ नहीं, घटनाओं की व्याख्या होती है। इसमें बड़ा अन्तर होता है। चरित्र सुनकर भ्रम हो सकता है और कथा से उस भ्रम का निवारण होता है। भगवान राम का चरित्र जिन लोगों ने देखा, वे भ्रमित हुए। सती ने देखा, गरुड़जी ने देखा, भ्रमित हुए और कथा सुनकर उनके भ्रम का निवारण हुआ। प्रभु ने मानो बड़े विनोद भरे स्वर में कहा, प्रमाण पत्र दे दिया – ओहो ! आप तो बड़े उत्कृष्ट कथा वाचक लगते हैं, आप अपनी कथा सुना डालिये। हनुमानजी ने कहा, मेरी कथा? मेरी कथा तो बस इतनी-सी है –

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीन बंधु भगवान।। ४/२

मैं तो मन्द हूँ, मोहवश हूँ, कुटिल-हृदय हूँ और अज्ञानी हूँ। बाद में प्रभु ने विनोद करते हुये हनुमानजी से पूछा, हनुमान, मैंने तो तुमसे कथा सुनाने को कहा था और तुम व्यथा सुनाने लगे। मैंने कथा सुनाने कहा था कि व्यथा सुनाने? हनुमान जी ने कहा, प्रभु, कथा तो आपकी ही है, जीव की क्या कथा, उसकी तो व्यथा ही है। जीव का कल्याण इसी में है कि आप जीव की व्यथा सुन लें और जीव आपकी कथा सुन ले। जीव की व्यथा आप सुनेंगे, तो आप में करुणा उत्पन्न होगी और जीव जब आपकी कथा सुनेगा, तो उसके हृदय में आपके लिये प्रेम उत्पन्न होगा। करुणा और प्रेम का मिलन ही तो जीवन की परिपूर्णता है। जब साधक के जीवन में भगवान की करुणा और भगवान के प्रति प्रेम दोनों एक साथ मिल जाते हैं, तो वह धन्य हो जाता है। विभीषण जी भी हनुमानजी से कहते हैं, कथा सुनाइए। तब कथावाचक हनुमानजी कहते हैं –

तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम। ५/६

कथा तो राम की है, मेरी क्या? बाद में विभीषणजी ने कहा, आपने तो अपनी कोई बात ही नहीं बताई। हनुमानजी की कथा बड़ी विलक्षण है। जो जन्म लेते ही सूर्य तक पहुँच गया हो, सूर्य को मुख में धारण कर लिया हो, वह तो है ही अलौकिक, पर हनुमानजी ने कहा, अरे, बन्दर की भी कोई कथा होती है क्या?

साखामृग कै बड़ि मनुसाई।
साखा तें साखा पर जाई।। ५/३२/७

क्या यही कथा है? इस डाल से उस डाल पर और उस डाल से उस डाल पर? कितनी देर तक सुनावें हम तुमको? –

तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम। ५/६

जब कथा सुना चुके, तो कथावाचक को धन्यवाद दिया जाता है। आप अपना नाम तो बता दीजिये। मेरा नाम हनुमान है। इस लंका की यात्रा में, लंका में अगर किसी ने हनुमानजी का नाम जान पाया, तो वे केवल विभीषण ही थे। नहीं, तो रावण की सभा में हनुमानजी ने इतनी सुन्दर कथा सुनाई, पर एक बार भी, रावण के पूछने पर भी अपना नाम नहीं बताया। धन्य हैं ! जब हनुमानजी ने कहा कि कथा तो श्रीराम की है और मेरा नाम हनुमान है, पर इस नाम का फल भी जानते हो क्या है? बोले –

प्रात लेइ जो नाम हमारा।
तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा।। ५/६/८

सबेरे-सबेरे अगर कोई हमारा नाम ले लेता है, तो उसे दिन भर भोजन नहीं मिलता है। मेरा नाम भूलकर भी मत लेना। कई लोग तो सबेरे हनुमानजी का नाम इसीलिये नहीं लेते हैं, कहते हैं कि उस समय हनुमानजी प्रभु की सेवा में रहते हैं। इसलिये दो घंटे बाद लेंगे। अब इन भोले लोगों को हम क्या बतावें? क्या दो घंटे बाद हनुमानजी खाली हो जाते हैं? क्या वे दो घंटे बाद आकर आपकी बात सुनने लगेंगे? भई, वे तो प्रतिक्षण सेवा करते हैं। कोई डर के मारे

उनका नाम न लेता हो कि यह तो हनुमान जी ने ही कहा है कि भोजन नहीं मिलता है, तो उस बुद्धिसागर व्यक्ति का क्या कहें? यही संत का संतत्व है। वे सदा भगवान की कथा, भगवान का नाम, भगवान का गुण कहते हैं। जब कथा समाप्त हुई, तब

तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम।। ५/६

हनुमानजी और विभीषणजी दोनों मग्न हो गये। तब विभीषणजी ने वह अन्तिम भय बताया।

तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा।
करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा।।
तामस तनु कछु साधन नाहीं।
प्रीति न पद सरोज मन माहीं।। ५/६/२-३

विभीषणजी कहते हैं कि मैं बड़ा तमोगुणी हूँ, राक्षस हूँ, क्या प्रभु मुझ पर कृपा करेंगे? संत ने डर दूर कर कहा – क्या मुझे देखने के बाद भी यह प्रश्न करना आपको उचित है? आप इतने बड़े महापुरुष विश्रवा मुनि के पुत्र हैं। क्या मुझे नहीं देख रहे हैं?

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर।। ५/७

अगर इस बन्दर पर प्रभु कृपा कर सकते हैं, तो आप पर कैसे नहीं करेंगे? उसके बाद उन्होंने कहा,

तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता।
देखी चहउँ जानकी माता।। ५/७/४

हनुमानजी ने विभीषण को मिथ्या धारणा, मिथ्या धर्म से मुक्त कर दिया। तुम भाई के प्रति अपने धर्म का पालन करना चाहते हो न ! तो निर्णय करो कि तुम्हारा वास्तविक भाई कौन है? मैं या रावण? अगर तुम शरीर की दृष्टि से देखोगे, तो रावण तुम्हारा भाई है। सीताजी की दृष्टि से देखोगे, तो मैं तुम्हारा भाई हूँ। जगज्जननी जानकीजी आदिशक्ति ही सबकी माँ हैं। वे मेरी भी माँ हैं और तुम्हारी माँ भी वे ही हैं। सच्चे भाई तो हम-तुम ही हैं। यह तो तुम्हारा नकली भाई है, जो तुम्हारा व्यर्थ का दुरुपयोग कर रहा है। तुम क्या निर्णय करते हो? विभीषण का भ्रम दूर हो गया और उसने यह निर्णय कर लिया कि नहीं-नहीं, प्रभु से भय छोड़कर मिलना चाहिये। लेकिन वह जो बात मैंने कही थी कि नींद खुलने के बाद कभी कभी झोंका आ जाता है। संत ने जगा तो दिया, पर उसके बाद जब हनुमानजी को रावण ने मृत्युदण्ड की आज्ञा दी, तब विभीषणजी ने आकर प्रार्थना की –

नीति बिरोध न मारिअ दूता। ५/२३/७

विभीषणजी ने कहा कि दूत को मारना नीति के विरुद्ध है। रावण ने कहा, विभीषण की बात ठीक है। विभीषण को लगा कि मृत्यु-दण्ड का आदेश मेरे कहने से वापस ले लिया, तो मेरा बड़ा सम्मान करते हैं। हनुमानजी समझ गये कि यह तो फिर बड़ा झोंका खाने लगा। इसको प्रभु का गुण दिखाई नहीं दे रहा है कि प्रभु ही मुझे हर संकट से बचा ले रहे हैं। इसको रावण का गुण दिखाई दे रहा है। अच्छा, अब मैं इसको सबक सिखाऊँगा। क्या किया? जब लंका जलाने लगे, तो विभीषण का घर छोड़ दिया। हनुमानजी जो चाहते थे, वही हुआ। जब रावण को यह पता चला कि सारी लंका जल गई और केवल विभीषण का घर बच गया है, उसने सोचा कि अरे, ये तो दोनों मिले हुए थे। मैंने उसको मारने के लिये कहा, तो इसने उसको बचाया और उसने नगर जलाया, तो इसका घर छोड़ दिया। यह तो बड़ा खतरनाक व्यक्ति है। इसको तो निकाल बाहर ही करना चाहिये। भगवान की ऐसी अनुकम्पा ही हो गई कि उनका झोंका ऐसा टूटा, जिसे वे सोच नहीं सकते थे। उनको विश्वास तो हो ही गया था कि रावण मेरी बात मानता है। किन्तु जब वे सीताजी को श्रीराम को देने के लिये रावण को उपदेश देने लगे –

तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार।। ५/४०

तब रावण ने कस के लात मारी। संसार की लात जब पड़ती है, तब भगवान के चरणों की याद आती है। जिसे भाई समझ लिया था, वह तो दूसरा ही निकला। रावण कहता है –

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती।
सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती।।
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा।
अनुज गहे पद बारहिं बारा।। ५/४०/५-६

रावण ने कहा, चले जाओ यहाँ से। एक वाक्य और कह दिया, यह अपनी नीति जाकर उन्हीं को सुनाना। यह भगवान की कृपा थी। जब विभीषण ने ऐसा कहा, तो रावण चाहता तो उसे बंदी बना लेता, मृत्यु दण्ड दे देता। पर उसके मस्तिष्क में एक भ्रम हो गया। प्रभु तो बड़े कौतुकी

हैं, भक्तों की सहायता इसी प्रकार करते हैं। उसको यह लगा कि इसकी सलाह मैंने न मानी होती, तो लंका न जली होती। तो लगता है, इसकी बुद्धि उलटी सलाह वाली है। अगर यह राम के पास चला जाय और ऐसी सलाह दे, तो उसका भी नाश ही होगा। भेजो इसको उसी के पास। यह निर्णय उसने कर लिया। जब गुप्तचरों ने आकर रावण से कहा कि आपके भाई की बात मानकर राम समुद्र के किनारे अनशन कर रहे हैं, तो खूब हँसा। बोला, इसीलिये तो मैंने उसे वहाँ भेजा है।

सुनत बचन बिहसा दससीसा।
जौं अस मति सहाय कृत कीसा।।
सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई।
सागर सन ठानी मचलाई।।
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई।
रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई।।
सचिव सभीत बिभीषन जाकें।
बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें।। ५/५५/४-७

जिसने विभीषण को मंत्री बना लिया, यहाँ तो देख ही लिया तुमने, उसकी बात मानी और सर्वनाश हो गया, लंका जल गई। चलो, श्रीगणेश हो गया, मेरी योजना सफल हो गई। विभीषण के सम्बन्ध में भगवान ने ऐसा किया कि मानो किसी को झोंका लग रहा हो और चपत लगकर उसकी नींद खुल जाय। विभीषण को रावण की लात लगी, तब वह जाग गया, मानो जीव जाग गया और तब वह ईश्वर की शरण में गया। इसके बाद की चर्चा कल करेंगे। बोलिये सियावर रामचन्द्र की जय। **(क्रमशः)**

अहैतुक कृपासिन्धु गुरु

स्वामी विरजानन्द जी महाराज श्रीमाँ सारदा देवी के मन्त्रशिष्य थे। स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें संन्यास व्रत में दीक्षित किया था। परवर्तीकाल में (१९३८-१९५१) वे रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के छठे संघाध्यक्ष हुए।

स्वामी विरजानन्द महाराज तब संघाध्यक्ष के रूप में सिल्हट (वर्तमान में बांग्लादेश) आश्रम में पधारे हुए थे। महाराज से दीक्षा-प्राप्त एक भक्त सिल्हट से लगभग ५० मील दूर असम स्थित करीमगंज में रहते थे। वे महाराज से वहाँ मिलने आए। उनकी एक गम्भीर समस्या थी। उनकी पत्नी मरणासन्न थीं और उनके स्वस्थ होने की कोई सम्भावना नहीं थी। रोग के कारण उन्हें शय्या पर ही लेटे रहना पड़ता था, किन्तु उनकी महाराज से दीक्षा प्राप्त करने की प्रबल इच्छा थी। वे भक्त बड़े कातर भाव से रोते हुए अपनी पत्नी की दीक्षा के लिए महाराज से बोल रहे थे।

उनकी व्याकुल प्रार्थना से द्रवित होकर रामकृष्ण संघ के संघगुरु, उनकी मरणासन्न पत्नी को उनके घर जाकर दीक्षा देने के लिए राजी हो गए। महाराज ने उन भक्त से कहा, ''मैं तुम्हारे घर आऊँगा और तुम्हारी पत्नी की इच्छा पूर्ण करूँगा।'' करीमगंज जाने के लिए तैयारियाँ होने लगीं। जिस सुबह महाराज सिल्हट से करीमगंज के लिए रवाना हो रहे थे, उनके दर्शन के लिए भक्तों का ताँता लग गया। महाराज करीमगंज से सिल्हट न लौटकर ढाका जाने वाले थे। भक्तों ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से महाराज को विदाई दी।

महाराज उन भक्त के घर पहुँचे और उनकी मरणासन्न पत्नी की शय्या के पास कुर्सी पर बैठे। उनकी पत्नी का शरीर अत्यन्त कृश हो चुका था। महाराज को देखते ही उनके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। वे मृत्यु के भय से नहीं रो रही थीं, वे इसलिए रो रही थीं कि इस मरणासन्न अवस्था में मृत्यु-भय से मुक्त करने और दिव्यानन्द प्रदान करने हेतु कृपासिन्धु गुरु स्वयं उनके पास आए हैं। महाराज से उन्हें आज अहैतुक कृपा प्राप्त हो रही है, इस आनन्द से वे रो रही थीं।

श्रद्धेय महाराज शय्याग्रस्त भक्त-पत्नी को महामन्त्र देते हुए बोले, ''माँ, मेरे साथ मन्त्रोच्चार करो...'' उन भक्तिमती नारी ने भी तीन बार महाराज के साथ स्पष्ट मन्त्रोच्चार किया। दीक्षा के बाद उन महिला के मुख पर असीम शान्ति का भाव विराज रहा था। शय्याग्रस्त होने के कारण वे अपने गुरु के चरणस्पर्श करने में अक्षम थीं। श्रद्धेय महाराज ने स्वयं अपने हाथ से अपने चरण छुए और अपनी मरणासन्न शिष्या के सिर पर हाथ रखा।

सचमुच गुरु की कृपा हो, तो शिष्य सहज ही भवसागर से पार हो जाता है। इसलिए तो संत कबीर ने गुरु की महिमा के बारे में कहा है :

गुरु गोविन्द दोउ घड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय।।

OOO

राष्ट्र की उन्नति में आदर्श शिक्षक की भूमिका

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

मगध के राजा घनानन्द ने शिक्षा का उपहास किया था। तब उस भरी सभा में चाणक्य ने राजा को चुनौती देते हुए कहा था कि शिक्षा तुच्छ नहीं होती और वह उसी शिक्षा की शक्ति से उस दुराचारी राजा के साम्राज्य का पतन करेगा। तत्कालीन समय में मगध का साम्राज्य गांधार (वर्तमान पाकिस्तान-अफगानिस्तान) से बिहार तक विस्तृत था तथा चाणक्य एक गरीब शिक्षक मात्र थे। चाणक्य चुनौती देकर सभा से चले गये। परवर्ती काल में चाणक्य ने चंद्रगुप्त को शिक्षा दी और उसे मगध का राजा बनाकर नन्द वंश का साम्राज्य समाप्त किया। इस घटना से हम शिक्षक की शक्ति से अवगत होते हैं। शिक्षक समाज, साम्राज्य और राष्ट्र का निर्माण करते हैं। आइए, हम ऐसे दायित्वपूर्ण कार्य करने वाले शिक्षकों के विभिन्न पहलुओं पर विचार करें –

आदर्श शिक्षक

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, "वे (श्रीरामकृष्ण देव) बहुधा एक दृष्टान्त दिया करते थे कि जब कमल खिलता है, तो मधुमक्खियाँ स्वयं ही उसका मधु लेने के लिए आ जाती हैं – इसी प्रकार जब तुम्हारा चरित्ररूपी पंकज पूर्ण रूप से खिल जायेगा और जब तुम आत्मज्ञान प्राप्त कर लोगे, तब देखोंगे कि सारे फल तुम्हें अपने आप ही प्राप्त हो जायेंगे। हम सब लोगों के लिए यह एक बहुत बड़ी शिक्षा है।... अत: प्रथम हमें चरित्रवान होना चाहिए और यही सबसे बड़ा कर्तव्य है , जो हमारे सामने हैं।[१] आदर्श शिक्षक सदैव ही पूज्य रहे हैं । ऐसा जीवन जिसे देखकर विद्यार्थियों में उनके प्रति स्वत: श्रद्धा जागृत हो, ऐसे आदर्श शिक्षक ही आदर्श नागरिकों का निर्माण कर सकते हैं। ऐसे शिक्षक ही वस्तुत: समाज और राष्ट्र का निर्माण करते हैं। पर किसी शिक्षक ने यदि शिक्षण को आय का स्रोत बना लिया हो, तो ऐसे वेतनभोगी दृष्टिकोण वाले शिक्षकों का सम्मान भी नहीं रह जाता। तब विद्यार्थी भी उनसे ऐसा व्यवहार करते हैं, जैसाकि शिक्षक को खरीद लिया हो।

नेताजी सुभाषचन्द्र के जीवन में हम पाते हैं कि उनके शिक्षक के आदर्शमय जीवन ने उन्हें उनके प्रति श्रद्धावान बना दिया था। तत्पश्चात् वे उनके उपदेशों का पालन करने लगे। इस प्रकार उनके शिक्षक ने स्वामी विवेकानन्द जी जैसे आदर्श से उनका परिचय करवाया और सुभाष स्वामीजी से अनुप्राणित हो गये। राष्ट्र को आज ऐसे ही शिक्षकों की आवश्यकता है, जो अपने व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर राष्ट्र-निर्माण के लिए अपना आदर्शमय जीवन स्थापित करें।

शिक्षक का दायित्व

ज्ञान शिक्षक की प्राथमिक आवश्यकता है। शिक्षक तो वही होता है, जो विद्यार्थी की अज्ञानता के परखचे उड़ा दे। अत: शिक्षक को अपने विषय में दक्षता होनी चाहिए। एक जलता हुआ दीपक ही अन्य दीपकों को प्रज्वलित कर सकने की क्षमता रखता है। जिस प्रकार एक वाई-फाई बहुत से कम्प्यूटर और मोबाइलों को समान रूप से इंटरनेट उपलब्ध करा सकता है, उसी प्रकार हमें ऐसे शिक्षक चाहिए, जो अपने समस्त विद्यार्थियों को ज्ञानालोकित कर सकें।

शिक्षा हमें आत्मनिर्भर बनाना तो सिखाती है, पर इसके अलावा शिक्षा हमारे जीवन-मार्ग को भी प्रशस्त करती है। अत: शिक्षक का दायित्व मात्र पाठ्यक्रम पढ़ाना ही नहीं होता, बल्कि विद्यार्थियों में नैतिक ज्ञान देना भी उनका एक विशेष, दायित्व होता है, जो कि पाठ्यक्रम में न भी हो। हमें ऐसे सिद्धान्तों की जरूरत हैं, जिससे हम मनुष्य बन सकें। हमें ऐसी सर्वांग सम्पन्न शिक्षा चाहिए, जो हमें मनुष्य बना सके।[२]

सृजनात्मकता

एक शिक्षिका नई-नई पाठशाला में पढ़ाने गई थी। पहली कक्षा के एक विद्यार्थी को वह अंग्रेजी में अंक तीन लिखना नहीं सीखा पा रही थी, क्योंकि विद्यार्थी कभी तीन का मुँह दायीं ओर, तो कभी बायी ओर, तो कभी ऊपर, तो कभी नीचे बना देता था।

शिक्षिका को उसके भाई ने उस विद्यार्थी को खेल-खेल में सिखाने की सलाह दी। अब शिक्षिका ने वैसा ही किया। शिक्षिका ने कलम से आकृति बनाते हुए कहा – देखो एक आधागोल और उसके नीचे एक और आधा गोल, बन गया तीन, अब तुम बनाकर दिखाओ। विद्यार्थी ने कलम से आकृति बनाते हुए कहा – आधा गोल और उसके नीचे आधा गोल, बन गया पूरा गोल। यह घटना हमें हास्यमय लग सकती है, पर यहीं विद्यार्थी की सृजनात्मक शक्ति भी छिपी हुई है। विद्यार्थी दो प्रकार के होते हैं – एक वे जो अच्छी नकल कर सकते हैं, ऐसे विद्यार्थियों को हम जो सिखाना चाहते हैं, वे वैसा ही सीख जाते हैं। पर दूसरे प्रकार के विद्यार्थी नकल

न करके स्वयं कुछ रचनात्मक सोचने व करने की क्षमता रखते हैं, अत: हमें उनकी इस सृजनात्मक शक्ति को कभी नष्ट नहीं करना चाहिए, बल्कि इसके लिये उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए।

प्रोत्साहन

ऐसा नहीं है कि विद्यार्थियों में प्रतिभाओं का अभाव होता है, बल्कि विद्यार्थी की प्रतिभा को खोजना और उस प्रतिभा को प्रोत्साहित करना शिक्षक का दायित्व होता है। ऐसा भी नहीं है कि सब पढ़ने में ही कुशल होंगे, कुछ खेल-कूद, कुछ विज्ञान, कुछ शास्त्र, तो कुछ भाषा आदि में पारंगत हो सकते हैं।

पीटने से यदि कोई विद्वान हो सकता, तो गधे, बैल, घोड़े सर्वाधिक विद्वान होते। प्रत्येक विद्यार्थी की कुछ समस्याएँ होती हैं,यदि शिक्षक उसे दूर कर सकें, तो वे प्रगति कर सकते हैं, परन्तु अधिकांशत: शिक्षक उन समस्याओं तक जाते ही नहीं हैं। बिना गिरे भी भला क्या कोई चलना सीख जाता है? पर उस गिरने वाले को निरन्तर प्रोत्साहित किया जाता है। इस कारण वह चलना सीख जाता है। सीखने वालों से तो भूलें होंगी ही, पर हमें उनकी भूलों को ठीक करके उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। कई विद्यार्थी भय के कारण भी शिक्षक से नहीं पूछ पाते। अत: शिक्षकों को चाहिए कि वे उनसे सरल वार्तालाप करके इस अव्यक्त भय को दूर करें। भय प्रगति में बाधक होता है और प्रोत्साहन भूल होने के पश्चात् भी अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त करता है। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं – 'गलतियाँ दिखाने से लोगों की भावना को ठेस पहुँचती है तथा वे हतोत्साह हो जाते हैं। श्रीरामकृष्ण को हमने देखा है – जिन्हें हम त्याज्य मानते थे, उन्हें भी वे प्रोत्साहित करके उनके जीवन की गति को मोड़ देते थे। शिक्षा देने का उनका ढंग ही बड़ा अद्भुत था।'[३]

रुचि उत्पन्न करना

अधिकांशत: शिक्षक अपने पाठ्यक्रम को समाप्त करने के उद्देश्य से पढ़ाते हैं। वहाँ उनके पास सोचने को इतना समय नहीं होता कि विद्यार्थी कितना ग्रहण कर पा रहे हैं। हाँ, हमें यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि शिक्षक का कार्य विषय को पढ़ाकर समाप्त कर देने से अधिक विषय में रुचि उत्पन्न करना होना चाहिए। यदि विद्यार्थी के मन में एक बार उस विषय के प्रति रूचि जग जाय, तो वह उस विषय को स्वयं पढ़ लेगा और उस विषय में सोचने-समझने में सक्षम होगा।

एक नवयुवक एक पाठशाला में शिक्षक नियुक्त हुआ। उसने आकर पाठशाला के कम्प्यूटर को छात्रों को पढ़ाने के लिए प्राधानाध्यापक से अनुमति माँगी, जो कि विद्यार्थियों की शिक्षा हेतु ही सरकार द्वारा प्रदत्त था। पर उन्होंने यह कहते हुए मना कर दिया कि कहीं कम्प्यूटर खराब न हो जाये। तब शिक्षक बच्चों को अपने मोबाइल के द्वारा ही विभिन्न प्रकार के विज्ञान सम्बन्धी चलचित्र दिखाने लगे। कभी कहानियों के माध्यम से, तो कभी मानचित्र, ग्लोब आदि दिखाकर विद्यार्थियों में रुचि उत्पन्न करने लगे, जिससे विद्यार्थी पढ़कर आने लगे, प्रश्न पूछकर अपनी समस्याओं का समाधान करने लगे तथा वैज्ञानिक प्रयोग आदि भी करने लगे। यही योग: कर्मसु कौशलम् है। इसी प्रकार प्रत्येक शिक्षक को अपने स्तर पर प्रयास करना चाहिए। इसके लिए शिक्षकों को विद्यार्थियों के स्तर तक पहुँचना होगा और रुचि उत्पन्न करके उन्हें उस स्तर से ऊपर उठाना होगा।

शिक्षकों की समस्याएँ एवं समाधान

शिक्षकों की प्रधानत: तीन समस्याएँ होती हैं।

(अ) विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक होती है, जिससे वे सब तक पहुँच पाने में असमर्थ होते हैं।

(ब) विद्यार्थियों का स्तर भिन्न-भिन्न होता है, अत: एक गति से पढ़ा पाना असंभव हो जाता है।

(स) अनेक प्रयासों के पश्चात् भी हताशा हाथ आती है। तब लगता है कि जिस ढर्रे में सब चल रहा था, उसी ढर्रे में ही यह चलता रहेगा।

इन समस्त समस्याओं को दूर करने के लिए सर्वप्रथम शिक्षकों को सकारात्मक दृष्टि से सदैव यह सोचना चाहिए कि प्रशिक्षित करने पर तो पशु-पक्षी भी बहुत कुछ सीख जाते हैं, तो विश्व का सर्वाधिक बुद्धिमान प्राणी मनुष्य क्यों नहीं सीख सकता?

जहाँ तक छात्र-संख्या का प्रश्न है, तो द्रोणाचार्य के भी एक सौ छ: विद्यार्थी थे, पर वे सभी किसी-न-किसी विद्या में पारंगत हुए थे। इसके लिये स्वयं शिक्षकों को बहुत अनुशासित होना चाहिए, जिससे विद्यार्थी भी अनुशासन की प्रेरणा पायें।

शिक्षा के साथ ही साथ परीक्षा का पर्व भी चलते रहना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों की असुविधाओं और बाधाओं का उन्हें भान हो तथा जिसकी जैसी असुविधाएँ हों, उसे वे दूर करके सबको एक साथ ही शिक्षा देने में सक्षम हो सकें। गृहकार्य देने पर कभी-कभी विद्यार्थी फटकार खाने के भय से दूसरों की लेखन पुस्तिका की नकल कर सकते हैं, पर परीक्षा में तो उन्हें स्वयं लिखना पड़ेगा। अत: वे पढ़ाई स्वयं करने

लगें, इसके लिए प्रत्येक विद्यार्थी को भिन्न-भिन्न गृहकार्य दिये जाएँ, जिससे उन्हें स्वयं परिश्रम करना पड़े।

शिक्षकों को शिक्षा तथा प्रोत्साहनवर्धक पुस्तकों का नियमित अध्ययन करना चाहिए, जिससे उनमें उत्साह बना रहे। शिक्षकों को समय-समय पर प्रोत्साहन देने वाले प्रशिक्षण दिये जाने चाहिए। शिक्षकों को हताश न होकर आशा की किरणों को स्वयं लाना होगा, क्योंकि विद्यार्थी तो अंधकार में है ही। इसके लिए उन्हें नवीन व मौलिक प्रयासों के विषय में सोचना चाहिए। उदाहरणत: एक विद्यार्थी सदैव शैतानी करता रहता था। उसकी शैतानी से सभी परेशान थे। एक दिन एक शिक्षक ने उसे पास बुलाकर कहा – तेरा हाथ दिखा तो मैं तेरा भविष्य बताता हूँ। उसके हाथ को देखकर शिक्षक ने कहा – वाह! ऐसा हाथ तो मैंने कभी नहीं देखा। छात्र की उत्सुकता बढ़ गई। तब शिक्षक ने स्पष्ट करते हुए कहा – बेटा, तू जैसा सोचेगा, बस वैसा ही बन जायेगा। यदि तू शैतानी करने की सोचते रहेगा, तो एक दिन तू बहुत बड़ा शैतान हो जायेगा और यदि तू विद्वान बनने की सोचेगा, तो तू सबसे बड़ा विद्वान बन जायेगा। इस बात ने उस छात्र के मन में बहुत गहरा प्रभाव छोड़ा और वह मन लगाकर पढ़ाई करने लगा।

उपसंहार – स्वामी विवेकानन्दजी अपने सारगर्भित वक्तव्य कुछ इस प्रकार प्रकट करते हैं, "किसी मनुष्य की श्रद्धा नष्ट करने का प्रयत्न मत करो। यदि हो सके, तो उसे जो कुछ अधिक अच्छा हो दे दो, यदि हो सके तो जिस दर्जे पर वह खड़ा हो, उसे जो कुछ अधिक अच्छा हो दे दो, यदि हो सके तो जिस दर्जे पर वह खड़ा हो, उसे सहायता देकर ऊपर उठा दो, परन्तु जिस स्थान पर वह था, उस जगह से उसे नीचे मत गिराओ। सच्चा गुरु वही है, जो क्षण भर में ही अपने को हजारों व्यक्तियों में परिणत कर सके। सच्चा गुरु वही है, जो विद्यार्थी को सिखाने के लिये विद्यार्थी की ही मनोभूमि में तुरन्त उतर आये और अपनी आत्मा अपने शिष्य की आत्मा में एकरूप कर सके तथा जो शिष्य की ही दृष्टि से देख सके, उसी के कानों से सुन सके तथा उसी के मस्तिष्क से समझ सके। ऐसा ही गुरु शिक्षा दे सकता है – अन्य दूसरा नहीं। अन्य सब निषेधक, निरुत्साहक तथा संहारक गुरु कभी भलाई नहीं कर सकते।[४] ○○○

सन्दर्भ : **१.** विवेकानन्द साहित्य, ६/२५८, **२.** वि.सा. ५/१२०, **३.**वि.सा. ६/११२, **४.** वि.सा. ६/२६३-६४

प्रेरक लघुकथा

दीन दयाल, भक्तों के रखवाल

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

संत हातम जिदा की भगवान पर बड़ी आस्था थी। एक बार हामिद लफ्फाफ् नामक एक फकीर उनके पास आया। बातचीत के दौरान जब रोजी-रोटी का प्रसंग चला, तब हातम ने कहा, "अल्लाह इतना रहमदिल है कि अपने बन्दों का ख्याल रखता है।" इसे सही न मानकर हामिद गुस्से से बोला, "अगर आप एक जगह बैठ जाएँ, तो देखूँगा कि अल्लाह निठल्ले के रोजी-रोटी की क्या व्यवस्था करता है?"

हातम ने फकीर की चुनौती स्वीकार की और दो वर्षों तक अपने स्थान पर डटे रहे। लेकिन उनके स्वास्थ्य में कोई अन्तर नहीं पड़ा। यह देख फकीर हैरान रह गया। उसने पूछा, "इतने लम्बे समय तक आप जीवित कैसे रहे?" संत ने जवाब दिया, "जब अल्लाह हवा में उड़ने वाले परिन्दे और जमीन पर चलनेवाली चींटियों के दानों की चिन्ता करता है, तो मुझ जैसे इन्सान की क्यों नहीं करेगा? मुहम्मद साहब ने कहा है – 'कभी कोई रोजी न खोजे, वह स्वयं तुम्हारे पास आएगी।' तब इस पर मैं विश्वास क्यों न करूँ?" उन्होंने आगे कहा, "मुझे पराश्रित होना पड़े या दुखों का पहाड़ टूट पड़े, अगर मेरी मंशा अच्छी है, तो मैं चिन्ता क्यों करूँ? खुदा की कृपा से अच्छे से जीवन व्यतीत होगा। अगर मृत्यु भी आए, तो उसे बलिदान समझूँगा। खुद को मिटाना ही अंदर के खुदा को जगाना है।" थोड़ा रुककर उन्होंने कहा, "एक शैतान ने पूछा, 'आज तू क्या खाएगा? क्या पहनेगा?' तब मैंने जवाब दिया, 'कफ़न पहनूँगा और वहाँ खुदा की इबादत करता रहूँगा।' यह सुनते ही शैतान चलता बना।"

भगवान दयानिधान हैं, करुणा के सागर हैं। उनका भक्तों के हर पल पर ध्यान रहता है। भक्तों के श्रद्धा-प्रेम से उनका अन्त:करण आप्लावित हो जाता है। भगवान भक्त की हर तरह से मदद करने के लिए आतुर रहते हैं। ○○○

पीछे की ओर देखने की आवश्यकता नहीं है – आगे बढ़ो। हमें अनन्त शक्ति, अनन्त उत्साह, अनन्त साहस तथा अनन्त धैर्य चाहिए, तभी महान कार्य सम्पन्न होंगे।

– स्वामी विवेकानन्द

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (७)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

मन्मथ-प्रसंग

ठाकुर एक बार बागबाजार में नेबूबागान में योगेन-माँ के घर गये थे। योगेन-माँ का दक्षिणेश्वर जाना उनके भाई हीरालाल को अच्छा नहीं लगता था। जब योगेन-माँ ठाकुर को अपने घर ले गयी थीं, तो (जैसा मैंने सुना है) हीरालाल उन्हें आतंकित करने के उद्देश्य से, सभी प्रकार के व्यायामों में निपुण बागबाजार के गोसाईपाड़ा के विख्यात पहलवान मन्मथ को ले आया था। परन्तु मन्मथ ठाकुर को देखते ही और उनकी दो-चार बातें सुनते ही दण्डवत् होकर रोते हुए उनसे कहने लगा, "प्रभो, मैं बड़ा अपराधी हूँ। मुझे क्षमा प्रदान कीजिये।" ठाकुर बोले, "तुम दक्षिणेश्वर आना।"

मन्मथ के साथ मेरा विशेष परिचय था। उसने मुझे आकर पकड़ा और बोला, "तुम मुझे ले चलो। ठाकुर ने मुझे आने को कहा है।" पहले से निश्चित करके एक दिन मैं उसे घोड़ेगाड़ी में लेकर दक्षिणेश्वर गया। साथ में हम नवीन मयरा के यहाँ से एक हण्डी रसगुल्ले भी ले गये थे।

लगता है, यहाँ पर मन्मथ का थोड़ा परिचय दे देना अप्रासंगिक नहीं होगा। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि वह सभी तरह के व्यायामों में कुशल था। वह अकेले ही सौ लोगों से लोहा ले सकता था। विद्यासागर महाशय के श्यामबाजार ब्रांच स्कूल में हर शनिवार को लड़कों के दो दलों के बीच भयंकर मारपीट हुआ करती थी। एक दिन बागबाजार के लड़कों का दल मन्मथ को साथ ले गया। श्यामपुकुर का दल बहुत बड़ा था। उसमें बहुत-से बड़े-बड़े कुश्तीबाज थे। तब मन्मथ इतने सारे कुश्तीबाजों के साथ लड़ पाने में असमर्थ होकर उल्टा लेट गया। वे लोग व्यायाम के खम्भे उखाड़ लाये और उसकी पीठ पर धमाधम मारने लगे। जब उसे पीटते-पीटते उन लोगों के मन की साध पूरी हो गयी, तब श्यामपुकुर के दल के लोग बोले, "मन्मथ, शाबाश! तूने मार खाकर ही हम लोगों को हरा दिया। इतना मार खाने के बाद भी जो धूल झाड़कर उठ सकता है, लगता है कि ऐसा दूसरा कोई वीर कलकत्ते में नहीं है।"

बागबाजार के एक शौकिया थियेटर के दल में 'शरत्-सरोजिनी' नाटक के मंचन के समय मन्मथ डकैत की भूमिका किया करता। उस अभिनय के समय जब वह लाल रंग के भड़कीले कपड़ों में सजधज कर, बिखरे हुए बालों का विग पहने मंच पर आकर खड़ा हुआ और हुँकार भरी तो श्रोताओं में से अधिकांश लोग क्षण भर के लिये काँप उठे थे।

जिन दिनों की बात लिख रहा हूँ, उन दिनों वही मन्मथ विख्यात धनाढ्य कीर्ति मित्र के एकमात्र पुत्र प्रिय मित्र का स्टुआर्ड (नायब) था। वह आचार-विचार आदि कुछ भी नहीं मानता था। उसने जनेऊ आदि सब छोड़ दिया था। खाने-पीने में भी वह किसी बात का विचार नहीं करता था।

ठाकुर के पास उसे ले जाने पर वे उसके साथ बड़े स्नेहपूर्वक बातें करने लगे। मैंने उन्हें बताया, "यह विख्यात गुण्डा है। इसके भय से बलवान लड़कों का दल भी घबराता है। कहीं कोई बड़ी मारपीट हो, तो उसमें इसे ले जाते हैं।" ये बातें सुनने के बाद ठाकुर ने अपनी तर्जनी उंगली से उसके शरीर का स्पर्श करके कहा, "अरे, यह क्या, यह तो इतना कठोर है!"

यह सुनकर कि मन्मथ ने अपना जनेऊ उतारकर रख दिया है, ठाकुर ने उससे पूछा, "तुम जनेऊ क्यों नहीं पहनते?" वह बोला, "महाराज, पसीने के कारण जनेऊ शरीर से चिपककर खुजली पैदा करता है, इसलिए मैंने उसे उतारकर रख दिया है।" ठाकुर ने कहा, "जनेऊ पहनना चाहिये।"

इसके बाद वे उसे काली-मन्दिर के प्रदक्षिणा-पथ पर ले गये। वहाँ एकान्त में खड़े-खड़े उन्होंने उस पर कृपा की और बोले, "किसी अन्य शनिवार के दिन आना।"

अगली बार हम लोग नौका में गये। इस बार भी वैसे ही नवीन के दुकान से रसगुल्ले ले गये थे। उस दिन भी ठाकुर की मन्मथ के साथ बातचीत हुई थी। सम्भवत: इन दोनों बार पंचानन नाम का एक अन्य लड़का भी हम लोगों के साथ था।

इस प्रकार वह केवल दो बार ही ठाकुर के पास गया था। इसके बाद वह बीच-बीच में मुझे प्रिय मित्र के 'मोहनबागान विला' नामक महलनुमा भवन में ले जाता। मैं उसके विशेष कक्ष में जाकर उसे ठाकुर की बातें तथा भजन सुनाया करता।

वह भी बड़ा सरल था। वह बड़ी भक्ति के साथ मुझे भी भजन सुनाता। वह मुझे इस बात की सावधानी रखकर वहाँ ले जाता था कि मैं प्रिय मित्र की दृष्टि में न आऊँ।

प्रकट रूप से वह तब भी ठाकुर की कृपा के विषय में किसी को नहीं बताता था। बड़े गोपनीय भाव से रहता। ठाकुर की कृपा से उसके अकल्पनीय रूपान्तरण की बात मैंने सर्वप्रथम उत्तराखण्ड में महापुरुष (स्वामी शिवानन्द) के मुख से सुनी थी। उन्होंने मुझे बताया था, "वही मन्मथ बागबाजार के रास्ते में सिद्धेश्वरीतला के पास ही अपने मामा के घर में रहा करता था। हम लोग उस मार्ग से होकर गुजरने पर उसके मुख से 'माँ, माँ' की आवाज सुनकर चौंककर खड़े हो जाते और थोड़ी देर उसे सुनते। तुमने उसे जैसा देखा था, अब वह वैसा नहीं रह गया है। उसका अब वह शरीर भी नहीं रहा। उसके सिर के बाल बहुत बढ़ गये हैं और वे भी जूओं से भर गये हैं। यदि जूएँ उसके सिर से गिर पड़ती हैं, तो वह उन्हें उठाकर फिर सिर पर रख लेता है। अब यदि तुम जाकर उसे देखो, तो आश्चर्यचकित हो जाओगे।"

कुछ वर्ष तिब्बत में बिताने के बाद जब १८९० ई. में मैं वराहनगर मठ में लौटा, तो एक दिन अपराह्न में वह केवल एक धोती पहने नंगे-पाँव, हाथ जोड़े हुए 'प्रियनाथ, प्रियनाथ' बोलते हुए आकर उपस्थित हुआ। उस समय स्वामीजी, रामकृष्णानन्द, निरंजनानन्द, शिवानन्द, अद्वैतानन्द, अभेदानन्द आदि अनेक गुरुभाई वहीं मठ में थे। उस समय हम लोग भजन-कीर्तन और बीच-बीच में ठाकुर के बारे में चर्चा कर रहे थे। मन्मथ के आते ही स्वामीजी ने उसे हम लोगों के बिस्तर पर ही बैठाने की चेष्टा की, परन्तु वह फर्श पर ही बैठा रहा और हाथ जोड़े मुख से 'प्रियनाथ, प्रियनाथ' की आवृत्ति करता रहा। वह मेरी ओर देखते हुए हल्के-से हँस रहा था।

स्वामीजी मुझसे बोले, "तू ही तो इसे ठाकुर के पास ले गया था न?" इसके बाद हम सभी मिलकर खूब कीर्तन तथा उद्दाम नृत्य करने लगे। परन्तु उसकी एक वही रट लगी रही, 'प्रियनाथ, प्रियनाथ'। वह एक क्षण के लिये चुप नहीं हुआ और उसने दूसरी कोई भी बात मुख से नहीं निकाली।

मैं उसे मन्दिर में ले गया और उसकी धोती के छोर से प्रसाद बाँध दिया। क्योंकि उसने हाथ बढ़ाकर उसे लिया नहीं था। वह 'प्रियनाथ, प्रियनाथ' कहता हुआ ही मठ से विदा हुआ।

करीब पाँच वर्षों बाद जब मैं एक बार फिर बंगाल में आया, तो हमारा मठ आलमबाजार में जा चुका था। वह एक दुमंजले पक्के मकान में स्थित था। यह वराहनगर मठ के भवन से अधिक बड़ा और आरामदायक था। इस भवन का किराया भी वराहनगर के समान ही दस रुपये था। इस मकान को कोई किराये पर लेने के लिये तैयार नहीं होता था, क्योंकि उस मकान में दो महिलाओं ने गले में रस्सी लगाकर आत्महत्या कर ली थी।

रामकृष्णानन्द, प्रेमानन्द, सारदानन्द, शिवानन्द, सच्चिदानन्द, सुबोधानन्द आदि उन दिनों उसी मठ में निवास कर रहे थे। अभेदानन्द हठपूर्वक मुझे जयपुर से ठाकुर का महोत्सव दिखाने के लिये ले आये थे। मैंने आकर देखा कि मेरे अपरिचित कई शिक्षित लड़के मठ में नियमित रूप से आना-जाना कर रहे हैं। इन्हीं में से एक लड़के का नाम शचीन्द्रनाथ बसु था। उसके उत्साहपूर्ण हँसमुख चेहरे को देखकर मुझे बड़ा आनन्द होता था।

एक दिन वह बलराम बाबू के घर में आकर मुझसे बोला, "आपके मन्मथ की क्या अवस्था हो गयी है, चलिये एक बार आपको दिखा लाऊँ!" उसके साथ मैं तत्काल मन्मथ के घर की ओर चल पड़ा। जाकर मैंने देखा कि वह एकटक सूर्य की ओर देखते हुए उन्मना होकर बैठा हुआ है। उसने खोंस-खासकर गेरुआ धोती पहन रखी थी, गले में बिल्कुल सफेद यज्ञोपवीत था, शरीर तपस्या से सूख चुका था और बाहर उसकी कहीं किसी ओर दृष्टि नहीं थी।

मन्मथ की अवस्था देखते ही मेरे हृदय के भीतर एक विचित्र भाव उठने लगा। मैं ठाकुर के अलौकिक प्रभाव को अनुभव कर अत्यन्त अभिभूत हो उठा। उस दिन मुझे प्रत्यक्ष बोध हुआ कि वनों-जंगलों में घोर तपस्या करके भी जो नहीं हो पाता, वह ठाकुर की कृपा से घर में बैठे ही अति सहज भाव से प्राप्त हो जाता है। 'गृहं तपोवनम्'[1] – घर ही तपोवन हो जाता है। थोड़े दिनों बाद ही सुनने में आया कि मन्मथ का विसूचिका (हैजे) के कारण देहान्त हो गया है। **(क्रमशः)**

१ वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां
गृहेऽपि पंचेन्द्रिय-निग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते
निवृत्त-रागस्य गृहं तपोवनम्॥
(हितोपदेश, अध्याय ४, सन्धि खण्ड)

– "वन में निवास करने पर भी विषयी लोगों के मन में विकार उत्पन्न होता है; घर में रहकर भी पंचेन्द्रिय-निग्रहरूपी तपस्या सम्भव है। जिन लोगों की बुद्धि शुभ कर्मों में लीन है, ऐसे विरागी व्यक्तियों के लिए घर ही तपोवन के समान है।"

साधक-जीवन में प्रत्याहार का महत्त्व

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

(स्वामी ब्रह्मेशानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ संन्यासी हैं। ये रामकृष्ण मठ, चेन्नई से प्रकाशित होनेवाली 'वेदान्त केसरी' मासिक पत्रिका के पूर्व सम्पादक थे। इनकी पातंजल योग विषयक प्रवचनमाला काफी लोकप्रिय हुई है। पातंजल योग से सम्बन्धित तप, स्वाध्याय, शरणागति आदि कई लेख इनकी पुस्तक 'आनन्द की खोज' में पहले से ही प्रकाशित हो चुके हैं। अब योग के शेष अन्य विषय जो अब तक अप्रकाशित हैं, महाराजजी ने विशेष रूप से विवेक ज्योति के पाठकों के लिये लिखे हैं, उन्हें प्रकाशित किया जा रहा है। - सं)

प्रत्याहार पतंजलि प्रणीत अष्टांग योग का पाँचवा अंग है, जिसका उद्देश्य ध्यान के पूर्व इन्द्रियों का संयम करना है। इन्द्रिय निग्रह और विषयों से उनके परावर्तन को गीता में बहुत महत्त्व दिया गया है। इन्द्रियाँ इतनी प्रबल हैं कि वे विद्वान, समझदार और संयम का अभ्यास कर रहे व्यक्ति के मन को भी जबरदस्ती खींच कर बहिर्गामी कर देती हैं (गीता २.६०)। अत: वही व्यक्ति स्थितप्रज्ञ हो सकता है, जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है (२.६१)। प्रत्याहार की विधि का सुन्दर दिग्दर्शन करते हुए श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को भीतर समेट लेता है, उसी प्रकार इन्द्रियों को विषयों से हटाने वाला ही स्थितप्रज्ञ हो सकता है और यह इन्द्रियों को हटाने का कार्य मन के द्वारा किया जाना चाहिए।

पतंजलि योगसूत्र में प्रत्याहार की परिभाषा है – **स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।। २/५४।।**

अर्थात् अपने-अपने विषयों के साथ संयुक्त न होने पर इन्द्रियों की जो चित्त के साथ एकरूपता होती है, वही प्रत्याहार है।

प्रत्याहार का अर्थ बलपूर्वक स्वयं को किसी कक्ष में बन्द कर इन्द्रियों को उनके विषयों से दूर रखना नहीं है। हम भले ही आँखें बंद कर लें और मुँह को न खोलें, तो भी कानों में आवाज और नाक में गंध पहुँचेगी। त्वचा भी ठंडा-गरम, कड़ा-नरम स्पर्श का अनुभव करेगी। अत: मन के द्वारा ही इन्द्रियों का निरोध किया जा सकता है। कठोपनिषद के रथ के प्रसिद्ध रूपक में शरीर को रथ, इन्द्रियों को घोड़े, मन को लगाम, बुद्धि को सारथि और आत्मा को रथ का सवार बताया गया है। मन रूपी लगाम से ही इन्द्रियाँ रूपी घोड़ों को नियंत्रित किया जा सकता है। हम सभी किसी-न-किसी प्रकार के प्रत्याहार का अभ्यास करते हैं, जब हम अप्रिय परिस्थिति या संवेदनों के बीच होते हैं। यह आंशिक प्रत्याहार है। सभी प्रकार के शुभाशुभ संवेदनों से इन्द्रियों को हटाना वास्तविक प्रत्याहार है।

अत: प्रत्याहार का अर्थ मन के द्वारा इन्द्रियों को अन्दर खींचना है। स्वामी विवेकानन्द भी यही बात समझाते हुए कहते हैं कि जो मन को किसी केन्द्र में लगाने और हटाने में सफल हो गया है, वह प्रत्याहार में सफल हो गया है। वह मन की बहिर्गामी शक्ति का नियंत्रण कर इन्द्रियों के चंगुल से उसे मुक्त कर लेता है। इसे करने की विधि बताते हुए स्वामीजी कहते हैं कि पहले कुछ देर बैठकर मन को खुला छोड़ कर भटकने दो। वह उछलता रहता है, पर उसे इन्द्रियों से मत जोड़ो।

चित्त के निरुद्ध होने पर इन्द्रियाँ भी अपने आप निरुद्ध हो जाती हैं। अन्य प्रकार के इन्द्रिय-जय में विषयों से दूर रहना पड़ता है या मन को समझाना पड़ता है। पर प्रत्याहार से ऐसा नहीं होता, क्योंकि उसमें चित्त प्रधान होता है। इच्छापूर्वक चित्त को जहाँ रखा जाय, इन्द्रियाँ उधर ही जाती हैं।

व्यासदेव इस योगसूत्र पर व्याख्या करते हुए कहते हैं, ''जिस प्रकार उड़ती हुई रानी-मक्षिका के पीछे अन्य मक्षिकाएँ भी उड़ती हैं और उसके बैठने पर बैठ जाती हैं, उसी प्रकार इन्द्रियगण भी चित्त निरोध होने पर निरुद्ध होते हैं, यही प्रत्याहार है।''

भगवद्गीता में स्पष्ट चेतावनी देते हुए भगवान कहते हैं, ''यदि मन को चंचल इन्द्रियों के पीछे असहाय रूप से जाने दिया जाय, तो उसकी प्रज्ञा शीघ्र नष्ट हो जाती है, जिस प्रकार वायु से अनियंत्रित नौका बह जाती है (गीता २.६७)। यह बात बार-बार मन को उसी प्रकार, नाना प्रकार से समझानी चाहिए, जिस प्रकार एक माता बच्चे को उसके कार्य के बुरे परिणाम को बताकर उससे दूर रखती है। आँखें देखने मात्र से सन्तुष्ट नहीं होतीं, कान कभी सुनते-सुनते अघाते नहीं। इन्द्रिय-विषयों के पीछे जाने से मन अधिक चंचल ही होता है। राजा ययाति ने बड़े कष्ट से यह सबक सीखा था कि कामनाओं की पूर्ति भोग से कभी नहीं होती। भोग से तो वे उसी प्रकार बढ़ती हैं, जैसे अग्नि

में घी डालने से वह प्रज्वलित हो उठती हैं। हाय ! हम व्यर्थ के इन्द्रिय भोगों में कितना बहुमूल्य समय और शक्ति गँवा देते हैं। विषय भोगों की असारता को बार-बार विचार द्वारा मन पर बिठाने का प्रयत्न करना चाहिए। इन्द्रियों की विषयों के पीछे दौड़ने की आदत को प्रयत्नपूर्वक नष्ट किये बिना प्रत्याहार और ध्यान नहीं हो सकता।

हिन्दू और जैन साधुओं में कमण्डलु या कपड़े की 'साफी' (गमछा) में भिक्षान्न ग्रहण करके भोजन करने की परम्परा है। भोजन करते समय वे सभी पदार्थों को मिला कर खाते हैं, भोज्य पदार्थों को अलग-अलग खाकर रसास्वादन नहीं करते। रसनेन्द्रिय इन्द्रियों में सबसे बलवान होती है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है –

तावज्जितेन्द्रियो न स्याद् विजितान्येन्द्रियः पुमान्।
न जयेद् रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे।।

अर्थात् अन्य इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने पर भी जब तक रसना या जिह्वा पर विजय प्राप्त नहीं की जाती, तब तक कोई जितेन्द्रिय नहीं हो सकता। रसना पर विजय पाने पर व्यक्ति विजयी हो जाता है। जैन संन्यासियों का एक नियम है कि वे खाना खाते समय भोजन को मुँह में घुमा-फिराकर स्वाद लेते हुए नहीं खाते। कौर को चबाते समय वे उसे मुँह में एक ही तरफ चबाते हैं। चलते समय वे इधर-उधर नहीं देखते और दृष्टि रास्ते पर लगाये रखते हैं। कुछ निष्ठावान साधक स्वयं के प्रमादवश इन्द्रिय भोग में रत होने पर स्वयं को दंड देते हैं। ईसाई सन्त फ्रांसिस एक बार बीमार पड़े। उनके लिए कोई स्वादिष्ट भोजन बनाया गया। उसे संत फ्रांसिस ने बड़े चाव से खाया, लेकिन उन्होंने अपनी इस स्वाद-लोलपुता के लिये स्वयं को दंडित किया था। हम भले ही ऐसी अति न करें, पर जानबूझकर विषय-भोग नहीं करना चाहिए। प्रिय-अप्रिय, जैसे भी वैषयिक अनुभव पूर्व कर्मानुरूप हों, उन्हें निर्विकार भाव से स्वीकार करना चाहिए। सावधान होकर चक्षु आदि के द्वारा विषय ग्रहण का अभ्यास छोड़े बिना प्रत्याहार नहीं होता। योगी जब इच्छा करते हैं कि मैं अमुक विषय को ग्रहण नहीं करूँगा, तो तत्काल उस इन्द्रिय विशेष की शक्ति का रोध हो जाता है।

एक मानस भाव को लेकर रहने से प्रत्याहार आसान हो जाता है। साधक को इन्द्रियों के स्तर पर नहीं, बल्कि मानसिक स्तर पर जीना चाहिए। उसको उच्चतर मानसिक रुचियों का निर्माण करना चाहिए।

पतंजलि के अनुसार प्रत्याहार में प्रतिष्ठित होने पर इन्द्रियों की परमा वश्यता होती है – **ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्।** (२-५५) श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग शिष्य स्वामी सारदानन्द उद्‌बोधन भवन में रहते थे। वहाँ चारों ओर हो-हल्ला होता रहता था, पर उसी के बीच वे शान्त भाव से उससे विचलित हुए बिना 'श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग' ग्रन्थ को लिखते रहते थे। बंगाल के प्रसिद्ध वैष्णव सन्त चैतन्य महाप्रभु के गुरु ने उनके इन्द्रिय संयम की परीक्षा करने के लिए उनकी जिह्वा पर चीनी रखी थी। पर चैतन्य देव के मुँह में इससे लार पैदा नहीं हुई थी। चीनी का जिह्वा-स्थित स्वाद के कणों से संपर्क हुआ था, लेकिन उनकी रसनेन्द्रिय मन के द्वारा इतनी प्रबल रूप से नियंत्रित थी कि उन्हें चीनी की मिठास का अनुभव ही नहीं हुआ। यही है, वास्तविक प्रत्याहार। श्रीरामकृष्ण के चित्र में उनकी आँखें खुली दिखती हैं, किन्तु वे गहरी समाधि की स्थिति में हैं। खुली आँखें कुछ भी नहीं देख रही हैं। वे मन में ही लीन हो गयी हैं। ○○○

गुरु-वन्दना

अक्षय कुमार सेन

हिन्दी प्रस्तुति – रामकुमार गौड़, वाराणसी

जय जय रामकृष्ण श्रीप्रभुवर, वांछाकल्पवृक्ष सुखधाम।
जय जय हे प्रभुदेव जगद्‌गुरु, जय जय परमहंस सुखधाम।।
अशरण-शरण पतितपावन जय, अधमोद्धारी दीन के बन्धु।
परमहंस श्रीरामकृष्ण हे श्रीठाकुर हरि करुणासिन्धु।।
दीनानाथ प्रणतपालक तुम करो दीन पर प्रीति अपार।
त्रिभुवनपालक जगजनतारक भक्तहृदयमणि भवभयहार।।
जय हृदिरंजक भवभयभंजक कर्ता-सृष्टि-स्थिति-संहार।
तुम शिव शक्ति तुम्हीं नारायण रामकृष्ण तुम जगदाधार।।
रामकृष्ण जय नरतनुधारी श्रीहरि तुम्हीं सच्चिदानन्द।
अन्तर्यामी निराकार साकार जगतपति परमानन्द।।
रहते सदा अगम्य वेद से, चारो वेद न पाते पार।
जय जय रामकृष्ण श्रीठाकुर तुम ही हो इस जग के सार।।
तेरी शक्ति अनन्त अगोचर अनुभवगम्य और दुर्बोध।
जन हितकारी करुणासागर तुम द्विजतनुधर गतभयक्रोध।।
जय जय प्रेमभक्तिदाता हे, श्रीठाकुर त्रितापहारी।
सेवानन्द-प्रदाता तुम ही अज्ञानान्धकारहारी।।

सारगाछी की स्मृतियाँ (६९)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

स्वामी प्रेमेशानन्द

मथुरादास ठंड से काँप रहे थे – ठंड से शरीर में काँटा जैसा चुभ रहा था, किन्तु पूछने पर कहते हैं – 'भीतर नहीं काँप रहा हूँ।'

'ब्रह्मभूतम्' – ब्रह्म हो गए। ब्राह्मण लोग इस बात का अभ्यास करते-करते, उसे बहुत स्वाभाविक बना लेते हैं। कुछ लोग बाहर से देखने पर खूब उच्च स्तर के लगते हैं, सदा प्रशान्त हैं, थोड़े में ही सन्तुष्ट दिखते हैं, किन्तु भीतर कोई अभ्यास नहीं होने पर तमोगुण से आच्छन्न होकर काष्ठवत् हो जाते हैं। वे साधन को ही साध्य समझकर उसे पकड़कर बैठ गए। इसीलिए ज्ञान-कर्म-भक्ति-योग चारों का समन्वय नहीं करने से किसी भी मार्ग से जाने पर सहज ही पतन हो सकता है और साधक को इसका पता भी नहीं लगता है।

६-३-१९६१

प्रश्न - 'मैं' (अहं) से मन-बुद्धि उद्भूत होते हैं, उसके बाद उससे प्राण और प्राण शरीर का निर्माण करता है। किन्तु उस प्रारंभिक अवस्था में मन-बुद्धि का संस्कार कैसे रहेगा, क्योंकि उसका तो पहले का कोई संस्कार नहीं है?

महाराज – इसीलिये प्रकृति को अनादि कहा गया है, किसी भी काल में इसका आरम्भ नहीं हुआ। स्वप्न के समय जो पेड़-पौधे, बाघ-भालू देखते हो, वे क्या सचमुच रहते हैं? उसी तरह यह जगत किसी काल में है ही नहीं। देश-काल-निमित्त रूपी माया के द्वारा इस प्रकृति को देखा जाता है। किन्तु यह माया क्या है, कहाँ से आई, इसका कारण क्या है, कुछ भी समझा नहीं जा सकता। यही सत्य बात है। इसीलिए तो कहते हैं, जगत किसी काल में है ही नहीं। यह ऐसा प्रतिभासित होता है। माध्यम हट जाने पर जगत्-टगत कुछ भी नहीं रहता। मानो निर्गुण के एक ओर सगुण पड़ा रहता है और सगुण में विभिन्न प्रकार के जीवों की सृष्टि हो रही है।

कर्म का रहस्य यह है कि यदि किसी को कर्म का उत्तरदायित्व दिया जाता है, तो कार्य के प्रति लगाव नहीं होने से कार्य नहीं होता है। भगवान की योजना देखते हो न कि उनका कार्य कैसे सुचारु ढंग से चल रहा है। प्रत्येक जीव मेरा घर, मेरी पत्नी कहते हुए प्राणपण से परिश्रम कर रहा है और वे (ईश्वर) चुपचाप बैठे हुए देख रहे हैं।

'जात इव' (उत्पन्न सदृश) – श्रीशंकराचार्य की यह बात सुनकर वैष्णव लोग बहुत नाराज हो जाते हैं। ऐसा ज्वलन्त मनुष्य प्रत्यक्ष लीला कर चला गया, फिर वह 'जात-इव' कैसे होगा? मैं भी पहले-पहले शंकराचार्य के विचारों को ग्रहण नहीं कर सका था। मैं उनके विचारों को बाद में समझ सका। क्योंकि अवतार देखते हैं कि वे कुछ नहीं कर रहे हैं, मशीन (यंत्र) अपना कार्य करती जा रही है। ठाकुर की अन्तिम बीमारी के समय बहुत से लोग ठाकुर की व्याधि को स्वीकार करना नहीं चाहते थे। प्राय: सबका यही विचार था। किन्तु स्वामीजी का भिन्न विचार था, इसलिए चिकित्सा होने लगी। हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द जी) ने ठाकुर की व्याधि को अस्वीकार किया था, वह दूसरी बात है। उन्होंने 'नैव किंचित् करोमीति' भाव से वैसा कहा था।

जब तक जीव-बोध है, तब तक अपने पूर्व कर्मफल से सुख-दुख मिलता है। जब विशिष्टाद्वैत भाव आता है, तब सब कुछ में ठाकुर की इच्छा दिखाई पड़ती है। जब इस अवस्था से ऊपर उठ जाते हैं, तब दिखता है कि वहाँ करना-कराना, इच्छा-अनिच्छा कुछ भी नहीं है।

किन्तु सब कुछ में भगवान की इच्छा देखना एक साधना है। संसारी मनुष्य भगवान की इच्छा समझकर पुत्र शोक के समय सान्त्वना पाता है। जिनकी प्रखर बुद्धि है, उन्हें बता देना चाहिए कि अपने कर्मफल को तुमने ही बनाया है, इसलिए इस पर तुम्हीं कोई टिप्पणी कर सकते हो। मुसलमान लोग भी कहते हैं, 'जो कुछ तुम करते हो, अपने लिए करते हो।' इस कर्मफल और जन्मान्तर-भोग को नहीं

जानने से मनुष्य नैतिक नहीं हो सकता। हिन्दुओं में किसानों और देहाती लोगों में बहुत से लोग ऐसे हैं। वे झूठ नहीं बोलते, सद्भाव रखते हैं और अवसर पाकर भगवान का नाम लेते हैं। महिलाओं की तो कोई बात ही नहीं है, वे तो पर-पुरुष के प्रति काम-भाव की बात की कल्पना भी नहीं कर सकती हैं।

बचपन में जब यज्ञोपवीत होता है, तब से नित्य उपासना करने लगते हैं – अपने हृदय में नीला आकाश, उसमें लाल सूर्य का चिन्तन करते-करते मन में अच्छा संस्कार पड़ता है और मन प्रशान्त होता है। हमलोग अभी तैयार नहीं है। किन्तु गदाधर (श्रीरामकृष्ण) का चिन्तन अत्यधिक उत्कृष्ट है। वे मेरे बाल गदाधर कितने अद्भुत हैं ! उनका तत्त्व जानकर उसमें मतवाला रहने से ही सब हो गया। जब बाबूराम महाराज ने ठाकुर से कहा – आप अपने इसी मुख से खाइये, तब ऐसा सुनकर मैं पहले-पहले समझ नहीं पाया। अब समझ पा रहा हूँ कि क्या रहस्य है? सम्पूर्ण गंगा तो हरिद्वार से गंगासागर तक फैली हुई है, किन्तु एक घाट पर गंगा-जल छूने से ही उनका स्पर्श करना हो जाता है। असीसी के सेंट फ्रांसीस की कथा को सभी जानते हैं। ऐसे ही गोपाल की माँ भी उसी परब्रह्म को शिशुरूप में गोद में लेकर आनन्दित थी।

आजकल के छात्र शिक्षक की बात नहीं मानते। क्यों नहीं मानते हैं, इसका कारण समझो। बच्चों की समस्यायें दूर करने, उनकी उन्नति के लिए उन्हें प्रेरित करने से मानेंगे। किन्तु अब देश की हवा बदल रही है, धीरे-धीरे सब होगा। हमारे संघ में ठाकुर की इच्छा से अपने-आप ही ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग की व्यवस्था है। स्कूल है, पुस्तकालय है, मन्दिर है, सेवा करो। क्या किया जाय, हम लोग तैयार नहीं हैं। किन्तु भविष्य में लोग आएँगे, सब क्षेत्र तैयार रहा।

संन्यासी का व्यावहारिक जीवन ही वास्तविक है, कभी किसी चीज से उद्विग्न न होना। अपने पथ पर सुप्रतिष्ठित होकर दूसरों की निन्दा-प्रशंसा से अनुद्विग्न हुए उसे हँसकर उड़ाया जा सकता है। पूरी गीता में यही एक स्वर है।

द्वैत, अद्वैत और विशिष्टाद्वैत को लेकर चिरकाल से विवाद चल रहा है। श्रीशंकराचार्य ने अद्वैत को, रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत को और मध्वाचार्य ने द्वैत को सत्य कहा। ठाकुर ने कहा – सब सत्य।

पिता राजा का अभिनय कर रहा है। बालक अपने पिता को देखकर कहता है – पिताजी राजा हो गए हैं। यहाँ पिता के राजा होने के प्रसंग को छोड़ देने पर सम्पूर्ण पिता को नहीं प्राप्त किया जा सकता। बच्चा जब पढ़ता है, यदि तभी उसको देखा जाय और जब वह खेलता है, उस समय उसे न देखा जाय, तो उस बच्चे को सम्पूर्ण रूप से देखना नहीं हुआ। वैसे ही, भगवान ने लीला के बहाने से इस समस्त संसार का निर्माण किया है। इस पूरे जगत का आनन्द और इसका तत्त्व नहीं जानने से ईश्वर को भी सम्पूर्णतया नहीं जाना जा सकता। बेल का खोपड़ा, बीज और गूदा सब मिलकर बेल है। अद्वैतावस्था से ऊपर उठ जाने पर भी सब कुछ देखने को नही मिलता है, इसीलिये तो श्रीशंकराचार्य और तोतापुरीजी को ब्रह्म की जगत-लीला को देखना और स्वीकार करना पड़ा।

धर्म के नाम पर मनुष्य कितना अशान्त है, इसको बता पाना सम्भव नहीं है। अल्लाह, ईसा, कृष्ण और दुर्गा के उपासक एक-दूसरे को शत्रु समझते हैं। किन्तु, यदि मनुष्य सबको अपना समझ सके, तो प्राण बच जाता, उसे शान्ति मिलती। तत्त्व न जानकर द्वैतवादी होने में यही एक दोष है। निश्चित ही यदि 'श्रुत्वा अन्येभ्य: उपासते' हो, तो वह अलग बात है। द्वैताद्वैत कोई पृथक् वस्तु तो है नहीं, वह है, एक ही वस्तु को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखना। यह विवाद का विषय भी नहीं है। गोपाल की माँ पूर्णत: द्वैतवादी थीं। उन्होंने अपने मन में ही चलते-चलते देखा, सब जगत गोपालमय है। इसके बाद लाखों वर्षों तक कृष्ण के मुख की ओर देखते-देखते, अनन्त सौन्दर्य के निधान ईश्वर की ओर देखते-देखते, मन कब उनसे एक हो जाएगा, यह पता नहीं चलेगा ! इतने दिनों तक एक स्वगत भेद रहता है। वैष्णव लोग कहते हैं कि निर्गुण दूसरा कुछ नहीं है, केवल कृष्ण की अंगकान्ति है। बात ठीक ही है। कृष्ण उसी कान्ति के घनीभूत रूप हैं। हमलोगों को तो बहुत सुविधा है। हम लोगों को झोल-झाल (सादा-तीखा), खट्टा-मीठा, सब कुछ मिला है। अर्थात् हमलोगों के यहाँ तो ज्ञान-भक्ति, कर्म, योग सबका समन्वय है, कोई असुविधा नहीं है। **(क्रमश:)**

वेदान्त पाप स्वीकार नहीं करता, भ्रम स्वीकार करता है और वेदान्त कहता है कि सबसे बड़ा भ्रम है – अपने को दुर्बल, पापी, दुर्भाग्यशाली कहना – यह कहना कि मुझमें कुछ भी शक्ति नहीं है, मैं यह नहीं कर सकता, मैं वह नहीं कर सकता, इत्यादि।

– स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द और श्रीरामकृष्ण देव की सामाजिक समरसता

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

(गतांक से आगे)

श्रीरामकृष्ण देव की सत्यनिष्ठा

आज से एक सौ पचास वर्ष पहले का युग वैसा था। चारों तरफ अधर्म बढ़ गया था। अंग्रेजों का प्रभाव, पाश्चात्य देश की भोगवृत्ति हमारे देश में बढ़ गयी थी। लोग धर्म पर विश्वास नहीं करते थे, अधर्म का आचरण करते थे। तब ऐसे एक महापुरुष की या अवतार की आवश्यकता थी, जिसके जीवन में धर्म का आचरण हुआ हो, जिसका जीवन सत्यनिष्ठ हो। इस सम्बन्ध में मैं आपको श्रीरामकृष्ण देव के जीवन की एकाध घटना बताता हूँ। लोग छुआछूत, जाति-भेद दूर करने की और सर्वधर्म समभाव की बातें कहते हैं, बड़े-बड़े नारे लगाते हैं, किन्तु वे अपने जीवन में क्या करते हैं?

श्रीरामकृष्ण देव ने जाति-पाँति हटाने का कभी नारा नहीं लगाया और न ही धर्म-समभाव की बात कहीं, पर अपने जीवन में जीकर दिखाया। आप सभी जानते हैं कि ब्राह्मण बच्चों का यज्ञोपवीत होता है। सामान्यत: जब बच्चा नौ वर्ष का हो, तो उसका यज्ञोपवीत कर दिया जाता है। श्रीरामकृष्ण देव का नाम गदाधर था। क्योंकि भगवान विष्णु, भगवान गदाधर की कृपा से उनका जन्म हुआ था। उनके पिताजी क्षुदिराम चट्टोपाध्याय ने स्वप्न देखा था कि गयाधाम में भगवान विष्णु दर्शन देकर रहे हैं कि क्षुदिराम मैं तुम्हारे घर पुत्र के रूप में आना चाहता हूँ। क्षुदिराम कहते हैं, प्रभु, मैं तो एक दरिद्र ब्राह्मण हूँ, मैं कैसे आपकी सेवा करूँगा? वे कहते हैं – तुम चिन्ता मत करो, तुम जैसे मुझे रखोगे, मैं उसी में प्रसन्न रहूँगा। उसके बाद श्रीरामकृष्ण देव का जन्म हुआ। इसलिए उन्हें गदाधर कहते थे।

श्रीरामकृष्ण देव के बचपन में ही उनके पिता की मृत्यु हो गयी। वे बड़े निष्ठावान ब्राह्मण थे। श्रीरामकृष्ण के बड़े भाई रामकुमार तीस वर्ष बड़े थे। इन दोनों भाइयों में इतना अन्तर था। वे पिता के समान थे। रामकुमार ने उनका पालन-पोषण किया और जब गदाधर आठ-नौ वर्ष के हुए, तब ब्राह्मण कुल के नियमानुसार उनका यज्ञोपवीत करने का आयोजन हुआ। निर्धन होने के कारण गाँव के धनी जमींदार लोगों ने उपनयन की व्यवस्था की। गाँव में उत्सव होने लगा।

बालक गदाधर ने पूछा – माँ, क्या बात है? माँ ने कहा, बेटा तेरा जनेऊ होगा। सुनकर वे प्रसन्न हुए। जब यज्ञोपवीत होता है, तो वह ब्राह्मण कुमार बटुक ब्रह्मचारी हो जाता है और यज्ञोपवीत के बाद भिक्षा के लिए जाता है। पहली बार पाँच या तीन घरों में जाकर भिक्षा की याचना करता है। भिक्षा में मंत्र सिखाया जाता है – 'भवती भिक्षां देहि' 'भवत:' शब्द संस्कृत का है। संस्कृत में स्त्रीलिंग के लिए 'भवती' हो जाता था । इसका अर्थ है – माता भिक्षा दो। पहले भिक्षा जो माता देती है, वह भिक्षा-माता समझी जाती है। उस बटुक ब्राह्मण के सारे जीवन वह माँ के समान होती है। इस भिक्षा माता का बड़ा महत्त्व है। उसे दूसरी माँ कहते हैं। उपनयन से द्विज का दूसरी बार जन्म होता है, इसलिये जो प्रथम भिक्षा देती है, वह दूसरी जननी होती है।

श्रीरामकृष्ण देव की माँ चन्द्रमणि देवी की एक लुहारिन सहेली थी। धनी उसका नाम था। चूँकि वह माँ की सहेली थी, इसलिए उसे धनी-माँ कहते थे। हम लोग माँ की सहेली को छोटी माँ या मौसी कहते हैं। जब बालक गदाधर छोटा-सा था, तो जन्म के समय धनी लुहारिन ने उसकी माँ के प्रसव में सहायता की थी और गदाधर को गोद में खेलायी थी। जब गदाधर बोलने-चलने लगे, चंचल हो गये, तो एक दिन धनी लुहारिन ने कहा – बेटा गदाई, जिस दिन तेरा जनेऊ होगा, तो क्या तू पहली भिक्षा लेकर मुझे भिक्षा-माता बनायेगा? गदाई ने कहा – हाँ, धनी-माँ, जरूर मैं तुमको भिक्षा माता बनाऊँगा। यह बात केवल गदाधर और धनी लुहारिन को मालूम थी।

जब उत्सव होने लगा, यज्ञोपवीत की तैयारी होने लगी और जब तीन-चार दिन शेष रह गये थे, तो अपने बड़े भाई को गदाई ने कहा – "दादा, एक निवेदन है।" बोले, "बोल क्या चाहता है?" "क्या मेरा जनेऊ होने वाला है?" कहा, "हाँ, तेरा जनेऊ होने वाला है।" गदाधर ने कहा – "दादा, मैंने, धनी-माता को यह वचन दिया है कि जब मेरा जनेऊ होगा, तो पहली भिक्षा उनसे लेकर उन्हें भिक्षा माता बनाऊँगा।" रामकुमार ने सुना, तो जैसे उनके सिर पर बिजली गिर गयी, "अरे क्या कहता है? तू ब्राह्मण का पुत्र होकर लुहारिन से भिक्षा लेगा? ऐसा नहीं हो सकता है। जब तेरा जनेऊ होगा, उस दिन से तू ब्राह्मण होगा और तू उससे भिक्षा लेगा?" रामकुमार बड़े व्यथित हुए कि कैसी दुर्बुद्धि है। उनके पिता शूद्रों से भिक्षा भी नहीं लेते थे। गदाधर ने कहा – यदि आप मुझे प्रथम भिक्षा धनी-माता से लेने की अनुमति नहीं देते, तो मैं जनेऊ नहीं ग्रहण करूँगा। रामकुमार बड़े संकट में पड़ गये।

बालक गदाधर ने तर्क दिया, जब बच्चों का यज्ञोपवीत होता है, तो वे जीवन भर सत्य बोलने का व्रत लेते हैं। रामकुमार शास्त्रों के बहुत बड़े पण्डित थे। छोटे भाई ने कहा, "दादा, आप बताइये, जब मुझे आप जनेऊ पहनायेंगे, तो क्या सत्य बोलने का व्रत नहीं देंगे?" उन्होंने कहा, "बिना सत्य व्रत के कैसे तू जनेऊ धारण करेगा, कैसे ब्रह्मचारी होगा?" तो दादा, आप सत्य बोलने का व्रत देंगे और पहले से ही यह बात झूठी होगी।' रामकुमार का मुँह बन्द हो गया। रामकुमार के पिता के मित्र थे वहाँ के जमींदार। रामकुमार वहाँ गये। बहुत दुखी थे। उन्होंने कहा कि गदाधर कहता है कि मैं धनी लुहारन से पहली भिक्षा लूँगा। ठीक है, वह हमारी माँ की सहेली है, हम उसकी श्रद्धा करते हैं, पर ये ब्राह्मण है, शूद्र से कैसे भिक्षा लेगा? तब उन्होंने उन्हें समझाया – देखो बेटा, तुम्हारे पिता मेरे मित्र थे। वे बहुत बड़े पण्डित थे, विद्वान थे। मैं उनको निकट से जानता हूँ। मैंने उनके मुँह से सुना है और देखा है कि बहुत से ऐसे ब्राह्मण परिवार हैं, जहाँ अब्राह्मणी ने पहले बालक को भिक्षा दी है, उनकी भिक्षा माता बनी हैं। इसीलिए तुम गदाधर पर नाराज न हो, उसकी बात मान लो। रामकुमार ने बात मान ली। जब यज्ञोपवीत हुआ, तो पहली भिक्षा गदाधर ने लुहारिन धनी-माता से ली। वे जीवन भर उन्हें माँ मानकर श्रद्धा करते रहे। इस प्रकार श्रीरामकृष्ण ने जाति-पाँति के बन्धन को तोड़ा और समाज में वर्णगत समरसता को प्रतिष्ठित किया। इसका प्रमाण श्रीरामकृष्ण देव के जीवन में मिलता है।

जाति-भेद कैसे दूर हो सकता है? श्रीरामकृष्ण के जीवन की दूसरी घटना आपको बताता हूँ।

श्रीरामकृष्ण के बड़े भाई दक्षिणेश्वर के मन्दिर में पहले पुजारी थे। उनकी मृत्यु के बाद ये पुजारी बने। तब ये विभिन्न प्रकार की साधना करने लगे। साधना के समय इनको अपने शरीर का ध्यान नहीं रहता था। साधना करते-करते उनका मन बहुत ऊँची अवस्था में चला गया था। साधना में अहंकार बहुत बाधक है। उन्होंने सोचा, ब्राह्मण कुल में मेरा जन्म हुआ है, इसलिए मैं ब्राह्मण हूँ, यह अभिमान भी मेरे मन से निकल जाये, इसके लिए साधना करनी चाहिए। क्या साधना करें?

ब्राह्मण लोग बाह्यशुद्धि और आन्तरिक शुद्धि दोनों पर ध्यान देते हैं। देना चाहिए, किन्तु उसकी अति ठीक नहीं है। आप देखेंगे कि जो कट्टर ब्राह्मण हैं, वे किसी के हाथ का पानी भी नहीं पीते हैं। किसी का छुआ हुआ अन्न खाने का तो सवाल ही नहीं है। भगवान श्रीरामकृष्ण देव को ऐसा लगा कि अरे मैं ब्राह्मण कुल में जन्मा हूँ, तो क्या मेरे मन में ब्राह्मण होने का अभिमान है? दक्षिणेश्वर के मन्दिर में प्रतिदिन माँ भगवती भवतारिणी को अन्न-भोग दिया जाता था। रानी रासमणि ने यह व्यवस्था कर रखी थी। कंगाल, भिखारी, शूद्र, मेहतर सभी प्रसाद पाते थे। श्रीरामकृष्ण देव ने क्या किया? वे जहाँ भिखारी भोजन करते थे, उनके भोजन कर लेने के बाद वहाँ गये। इन सबके भीतर नारायण हैं, उनकी जूठन को प्रसाद समझकर उसे ग्रहण किया। उनकी जूठी पत्तल अपने सिर पर रखकर गंगा में ले जाकर उसका विसर्जन किया। किसने विसर्जन किया? गदाधर चटर्जी ने किया, जो ब्राह्मणों में उत्तम ब्राह्मण माने जाते थे। ऐसा अभिमान भगवान के अतिरिक्त कौन दूर कर सकता है? तभी तो स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने गुरु श्रीरामकृष्ण देव के प्रणाम मन्त्र में कहा –

स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे।
अवतार-वरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः ।।

जाति-कुल के अभिमान को मिटाया

श्रीरामकृष्ण देव के जीवन की एक दूसरी घटना है। दक्षिणेश्वर के मन्दिर में सफाई के लिए एक सफाई कर्मचारी मेहतर था। उनका नाम था रसिक। श्रीरामकृष्णदेव ने सोचा कि ये रसिक हमारा पाखाना साफ करता है और झाड़ू लगाता है, तो उसको लोग नीच समझते हैं, छोटा समझते हैं। कहीं मेरे मन में भी तो ऐसा अभिमान नहीं है? रसिक उनकी बड़ी श्रद्धा करता था। उन्हें बाबा कहता था। एक दिन इन्होंने कहा, "अरे रसिक, मैं तेरे घर का पाखाना साफ करना चाहता हूँ। रसिक ने हाथ जोड़कर कहा, बाबा, यह क्या कह रहे हैं आप? ऐसी बात कहने मात्र से कितना बड़ा पाप मुझे लगेगा। नहीं, नहीं, ये कभी नहीं हो सकता।"

श्रीरामकृष्ण देव ने देखा कि यह तो मुझे अनुमति नहीं देगा। इस बात को आठ-दस दिनों में रसिक जब भूल गया, तो भगवान श्रीरामकृष्ण देव एक दिन मध्य रात्रि में उठकर रसिक के घर चले गये। उसके पाखाने को उन्होंने हाथ से साफ किया, गंगा से जल लाकर धोया। उसके बाद अपने बड़े-बड़े बालों से साफ किया और कहा – हे प्रभु जैसे मैंने इस पाखाने को साफ किया है, मेरे हृदय को शुद्ध कर देना। मेरे दिल में ये अभिमान न रह जाये कि मैं ब्राह्मण हूँ और यह शूद्र है। इससे बड़ा जाति-प्रथा मिटाने का कोई उपाय हो सकता है? इस प्रकार श्रीरामकृष्ण देव ने अपने जातिगत अहंकार को मिटाया और समाज को सौहार्द और समरसता की शिक्षा दी।

भक्ति से जातिप्रथा का उन्मूलन

केवल बहिरंग दृष्टि से एक साथ भोजन करने और वैवाहिक सम्बन्धों से ही जाति प्रथा नहीं मिटेगी। हमें अपने हृदय को

शेष भाग पृष्ठ ३२० पर

स्वामी विवेकानन्द और उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में भारत का जागरण

स्वामी भजनानन्द

वरिष्ठ न्यासी, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ

(अनुवादक - स्वामी गीतेशानन्द, रामकृष्ण मिशन, शिमला, हि.प्र.)

(गतांक से आगे)

साक्षरता आन्दोलन

बंगाल मे साक्षरता आन्दोलन की शुरुआत माइकल मधुसूदन (१८२४-१८७३) के पद्य साहित्य के साथ मानी जाती है, जिनकी रचानाएँ बंगाल की संस्कृति तथा जीवन को दर्शाती हैं। किन्तु बँगला साहित्य को जिन्होंने आधुनिक और राष्ट्रीय स्वर प्रदान किया है, वे हैं बंकिमचंद्र चटर्जी (१८३८-१८९४)। बंकिम मानवतावादी थे, किन्तु उनका मानवतावाद उच्च आदर्शों और मूल्यों जैसे शौर्य, देशप्रेम, पवित्रता तथा स्वाधीन विचार तथा विवेक पर आधारित था। श्रीकृष्ण के जीवन पर अपनी पुस्तक में उन्होंने अवतारों को भगवान नहीं, बल्कि परिपूर्ण मनुष्य, सर्वांगीण आदर्श और कर्मयोगी के रूप में चित्रित किया है। बंकिम साहित्य का भारत के अन्य प्रांतीय साहित्यों के विकास में भी अभूतपूर्व योगदान है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर (१८६१-१९४१) के आगमन से बंगला साहित्य वास्तविक रूप से पल्लवित-पुष्पित हुआ, जो स्वामी विवेकानन्द के समकालीन थे। रवीन्द्रनाथ का पश्चिमी संस्कृति के प्रति समादर था और वे प्राच्य तथा पाश्चात्य का समन्वय चाहते थे। फिर भी वे भारतीय संस्कृति के प्रति पूर्णतया बद्धमूल थे। भारत के अन्य प्रान्तों में भी साहित्य के माध्यम से पाश्चात्य संस्कृति की प्रतिक्रिया दृष्टिगोचर हुई। हिन्दी साहित्य के भारतेन्दु हरीशचंद्र (१८५०-१८८५), उर्दू साहित्य के मिर्जा ग़ालिब आदि प्रमुख हैं।

सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलन

उपरोक्त धार्मिक-सामाजिक और साक्षरता आन्दोलनों ने भारतीयों में अपनी सांस्कृतिक विरासत की थोड़ी बहुत समझ और उनमें भारतीय होने का गर्व पैदा कर दिया। भारतीयों ने अपनी-अपनी आंचलिक भाषाओं में समाचार पत्र-पत्रिकाएँ निकालीं, जिससे राष्ट्रीय चेतना का पोषण तथा प्रसार हुआ। इन सबके फलस्वरूप भारतीयों में राष्ट्रीय राजनीतिक जागृति पैदा हुई और उनमें भारत एक स्वतन्त्र राजनीतिक सत्ता है, यह भावना आकार लेने लग गयी। अभी वह समय नहीं आया था कि भारतीय स्वतन्त्रता के विषय में सोचें और एक स्वतन्त्र राष्ट्र की धारणा तो कल्पनातीत थी। १९वीं शताब्दी के सामाजिक-राजनीतिक नेता केवल चाहते थे – प्रशासन में अधिकतम हिस्सेदारी, नागरिक सुविधाओं का प्रावधान, ब्रिटिश नागरिकों के साथ समानता, देशीय उद्योगों का विकास और अन्यान्य विकासमूलक कार्य। इसीलिए भारतीयों के मन में राष्ट्रीय चेतना के उदय को विशुद्ध राजनैतिक आन्दोलन न कहकर सामाजिक-राजनैतिक संज्ञा दी गयी है। हरीशचन्द्र मुखर्जी, राजनारायण बोस, भूदेव मुखर्जी, नवगोपाल मित्र, ज्योतीन्द्रनाथ ठाकुर और सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी उस समय के बंगाल के कुछ मुख्य सामाजिक-राजनैतिक नेता थे। सन् १८७६ में प्रसिद्ध वक्ता और नेता श्री सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के द्वारा 'भारतीय समिति कलकत्ता' (Indian association of Calcutta) की स्थापना हुई और सन् १८८५ में उदारवादी कुछ अंग्रेजों तथा भारतीय, जिनमें ए. ओ. ह्यूम, व्योमेशचन्द्र बैनर्जी, दादाभाई नैरोजी आदि प्रमुख थे, इन्होंने 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना कर इस सामाजिक-राजनैतिक आन्दोलन को सांगठनिक सहायता प्रदान की।

उपरोक्त आन्दोलन केवल हिन्दुओं की उच्चतर जाति तक ही सीमित थे। मुस्लिम समाज ने इस पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव की प्रतिक्रिया में कोई ख़ास सक्रियता नहीं दिखाई। कांग्रेस की स्थापना ने मुस्लिम समाज में हिन्दू वर्चस्व का सन्देह पैदा कर दिया और मुस्लिमों के एक वर्ग ने सर सैय्यद अहमद खान के नेतृत्त्व में Muhammedan Anglo-Oriental college की स्थापना की, जो बाद में नाम बदलकर 'अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी' हुआ। यद्यपि सर सैय्यद अहमद खान का उद्देश्य मुस्लिमों में आधुनिक शिक्षा का प्रसार तथा आधुनिक दृष्टिकोण का विकास करना था, लेकिन बाद में 'अलीगढ़ आन्दोलन' अलगाववादी चेतना का माध्यम बनकर रह गया। विकास और विश्वजनीन सिद्धान्तों पर आधारित धार्मिक समन्वयता के मुद्दों पर हिन्दू-मुस्लिम दरार चौड़ी होती गयी, जिसने अर्ध शताब्दी के बाद भारत के विभाजन को जन्म दिया।

भारत के जागरण में स्वामी विवेकानन्द का योगदान

उपरोक्त विस्तृत भूमिका का उद्देश्य पाठकों को भारत की, विशेषकर बंगाल की तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक अवस्था से अवगत कराना था। १९वीं शताब्दी में भारत के जागरण में स्वामी विवेकानन्द द्वारा किए गए महान कार्य को समझने के लिए तत्कालीन अवस्था का उचित मूल्यांकन आवश्यक था। स्वामीजी के इस महत् कार्य पर बहुत से प्रसिद्ध विद्वान् पहले से ही काफी शोध कर चुके हैं, यहाँ पर स्वामीजी के महत् योगदान पर स्वतन्त्र अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

राष्ट्रीय चेतना का निर्माण

पूर्वोक्त सुधारवादी आन्दोलन और सामाजिक नेताओं के कार्य राष्ट्रीय परिचय या राष्ट्रीय चेतना का निर्माण नहीं कर सके थे। उनकी भूमिका केवल प्रांतीय प्रतिनिधित्व तक ही सीमित थी। बंकिमचंद्र चटर्जी जिनके आनंदमठ जैसे उपन्यासों ने हजारों लोगों में देशभक्ति की प्रेरणा जगायी; वे भी सम्पूर्ण भारत के साथ एकात्म नहीं थे। बहुत से विद्वानों के मत में बंकिम का देशभक्तिमूलक गान 'वन्दे मातरम' जो उस समय क्रांतिकारियों के लिए युद्धघोष और राष्ट्रीय गान बन चुका था, वह भी बंगाल की मातृभूमि को लेकर लिखा गया था।

जब हम पीछे मुड़कर उन दिनों का सिंहावलोकन करते हैं, तो उस समय की धार्मिक भावधारा के नेताओं के सीमित दृष्टिकोण को देखकर विस्मित हो जाते हैं। कहना न होगा कि उनमें वैश्विक दृष्टिकोण तो दूर राष्ट्रीय दृष्टिकोण का भी अभाव था। इसके विपरीत स्वामी विवेकानन्द का आरम्भ से ही राष्ट्रीय दृष्टिकोण था, जो कि उनके वैश्विक मनोभाव का ही अंग था।

बहुत से चिन्तकों और विद्वानों के मतानुसार स्वामी विवेकानन्द ही भारतीय राष्ट्रवाद के पहले प्रवक्ता थे। 'समाज विज्ञान का विश्वकोष' में फ्लोरेन्स मिशनन (Florence Mishnun) लिखते हैं, ''विवेकानन्द एक प्रकार से आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के नि:शब्द अग्रदूत थे, जिनकी विचारधारा उनके मतवाद को प्रदर्शित करती है।''

प्रसिद्ध इतिहासकार रमेशचन्द्र मजुमदार ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। एक अन्य इतिहासविद् आर. जी. प्रधान को उद्धृत करते हुए वे कहते हैं, ''स्वामी विवेकानन्द को भारतीय राष्ट्रवाद का जनक कहा जा सकता है। उन्होंने न केवल इसका सृजन किया है, बल्कि इसके उच्च और महान तत्त्वों को अपने जीवन में आचरित भी किया है।'' ईसाई धर्म प्रचारक के रूप में भारत आये हुए सी. एफ. एंड्रूस, जो बाद में महात्मा गाँधी के अनुयायी बन गये थे, लिखते हैं, ''स्वामीजी के निर्भीक देशप्रेम ने समूचे भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नया रंग दिया। स्वामी विवेकानन्द का भारत के नव जागरण में योगदान तत्कालीन किसी भी अन्य व्यक्ति के योगदान से कहीं अधिक है। यद्यपि वे कांग्रेस के संपर्क में नहीं रहे, फिर भी उन्होंने उसकी नीतियों को आकार दिया तथा उसके विकास को उन्नत किया।

प्रसिद्ध इतिहासविद् और राजनीतिज्ञ के. एम. पाणिक्कर लिखते हैं, ''हिन्दुओं में जातीय एकता ही थी, जिसने भारतीय राष्ट्रवाद को गति तथा दिशा दी, जिसके कारण भारत के अधिकांश प्रांत एकछत्र हो सके थे। इस राष्ट्रीय एकता के निर्माण में स्वामी विवेकानन्द का योगदान सर्वाधिक है।..... आर्य समाज, ब्रह्म समाज और अन्य आन्दोलन यद्यपि अपने समय के बहुमूल्य सुधारवादी आन्दोलन थे, किन्तु ये अपने-अपने प्रान्तीय वैशिष्ट्य तक ही सीमित थे। स्वामी विवेकानन्द ही प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने हिन्दू-भावान्दोलन को राष्ट्रवाद की चेतना दी और सभी आन्दोलनों को अखण्ड भारत का एक सामान्य दृष्टिकोण प्रदान किया।''

स्वामी विवेकानन्द ही आधुनिक भारत के प्रथम नेता थे, जो समूचे भारत और भारतीयों के साथ एकात्मबोध करते थे। उन्होंने अधिकांश भारत का भ्रमण किया था और जहाँ भी वे जाते, वहाँ के लोगों के साथ तादात्म्य स्थापित कर उन्हें अपना बना लेते थे। स्थानीय लोग भी उन्हें श्रद्धापूर्वक स्वीकार करते थे। यह विशिष्टता स्वामी विवेकानन्द को छोड़कर अन्य किसी भारतीय में उतनी स्वाभाविक रूप से प्राचुर्य के साथ दृष्टिगोचर नहीं हुई थी। मातृभूमि के प्रति उनके प्रेम के सम्बन्ध में भगिनी निवेदिता लिखती हैं, ''भारत उनके हृदय में धड़कता था, भारत उनकी नसों में स्पन्दित होता था, उनका दिवास्वप्न भी भारत ही था और उनका दु:स्वप्न भी भारत ही था। वे स्वयं भारत में परिणत हो चुके थे। वे भारत की रक्त-मांस की प्रतिमूर्ति थे। वे भारत की आध्यात्मिकता, पवित्रता, बुद्धि, शक्ति और भाग्य के प्रतीक स्वरूप थे।''

स्वामी विवेकानन्द प्रथम ऐसे भारतीय थे, जिनकी दृष्टि में सभी भारतवासी चाहे वे तथाकथित अछूत ही क्यों न हो, उनके भाई थे। उन्हीं के शक्तिशाली शब्दों में, ''ऐ भारत... मत भूलना कि नीच, अज्ञानी, दरिद्र, चमार और मेहतर तुम्हारा रक्त और तुम्हारे भाई हैं। ऐ वीर! साहस का आश्रय लो। गर्व से कहो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, बोलो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी,

ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी सभी मेरे भाई हैं।''

यद्यपि स्वामी विवेकानन्द भारतीय राष्ट्रवाद के जनक थे, फिर भी उनका राष्ट्रवाद राजनीतिक राष्ट्रवाद नहीं था। उनका प्रयास सुशिक्षित उच्च जातियों में ही नहीं, बल्कि दलित जातियों में भी राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय पहचान, भारतीयों में सांस्कृतिक एकत्व का निर्माण करना था। बीसवीं शताब्दी में स्वामी विवेकानन्द के अतिरिक्त किसी भी आचार्य ने ऐसा प्रयास नहीं किया था। यद्यपि महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस ने एक सुदृढ़ नींव पर राष्ट्रवाद खड़ा किया था, परन्तु यह बहु प्रचारित राष्ट्रवाद पूर्णतया राजनीतिक था।

राष्ट्रीय जागृति

राष्ट्रीय जागृति अर्थात् भारत में रहने वाले समूचे जनसमुदाय का जागरण का मूलस्रोत स्वामी विवेकानन्द के सन्देश में पाया जाता है। उस समय का शिक्षित समाज एक ओर तो पाश्चात्य संस्कृति के सम्मुखीन हो रहा था और दूसरी ओर सर विलियम जोन्स, विल्किस, कोलब्रुक आदि इन्डोलोजी के पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा आध्यात्मिक और जागतिक दोनों क्षेत्रों में संस्कृत साहित्य की अनमोल विस्मृत महिमा के पुनरुद्धार से भलीभाँति परिचित हो रहा था। इन दोनों घटनाओं ने उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय जनसमाज में एक आलोड़न उत्पन्न कर ज्ञानार्जन के लिए उचित अवसर पैदा कर दिए थे और जिसने मुख्य रूप से बंगाल और कमोबेश भारत के अन्य क्षेत्रों में सांस्कृतिक पुनरुत्थान को जन्म दिया। लेकिन यह पुनर्जागरण पाश्चात्य संस्कृति और पाश्चात्य मूल्यों के द्वारा प्रभावित और परिचालित था। अधिकतर इसका प्रभाव पूर्वोक्त सुधार आन्दोलन के कारण अधिक नहीं था ।

यही समय था जब स्वामी विवेकनन्द राष्ट्रीय जागरण का सन्देश देने के लिए उठ खड़े हुए थे। 'जागरण' का तात्पर्य स्वामीजी के अनुसार तीन बातों से था – (अ) जनसमुदाय का जागरण और राष्ट्र-विकास में उनकी सहभागिता (ब) भारतीय प्राचीन संस्कृति की पुनर्प्राप्ति, उसका पुनरुज्जीवन और पुनर्निर्माण (स) भारत की आत्मा का आध्यात्मिक जागरण

(अ) जन-जागरण – राजा राममोहन राय, आर. जी. रानाडे आदि द्वारा प्रारम्भिक किए गए समाज सुधार आन्दोलन और सांस्कृतिक आन्दोलन मुख्य रूप से मध्यम वर्गीय और उच्च वर्गीय था। इन आन्दोलनों में समाज के निम्न वर्ग की भागीदारी नहीं के बराबर थी। इसके विपरीत स्वामी विवेकानन्द की धारणा थी कि राष्ट्र की शक्ति उसके जन-साधारण पर निर्भर करती है और अपने कार्य के आरम्भ से ही उन्होंने इस बात को ध्यान में रखा था। उन्होंने कहा था, ''वर्तमान में अच्छा होगा कि तुम देश के गाँव-गाँव जाकर लोगों से कहो कि खाली बैठने से कुछ नहीं होगा। उनको वास्तविकता से अवगत कराओ और कहो 'हे भाई! उठो, जागो और कितना सोओगे।''' वास्तव में स्वामी विवेकानन्द ही बिन-राजनीतिक जन-जागृति लाने वाले प्रथम नेता थे। अमेरिका में पहुँचने के बाद ही अपने एक पत्र में वे जन जागरण की योजना के विषय में लिखते हैं, ''शत सहस्र पुरुष और नारी जो पवित्रता के शक्ति से जाज्वल्यमान हों, ईश्वर में जिनका दृढ़ विश्वास हो और जिनके हृदय में गरीबों, दलितों और पतितों के लिए परहित भावना के कारण सिंहबल का संचार हुआ हो, देश के समस्त भूभाग में जाएँ और जन-जन को मुक्ति, पवित्रता, उन्नति और समत्व का मन्त्र सुनाएँ।''

भारत में ब्रिटिश शासन होने के कारण स्वामीजी अपनी इस योजना का क्रियान्वयन नहीं कर पाए थे और बाद में अपने एक पत्र में वे लिखते हैं कि उन्होंने इस कार्यक्रम का त्याग कर दिया है। कहना न होगा, यदि इस योजना का क्रियान्वयन हो चुका होता, तो देश का भाग्य कुछ और ही होता।

प्राचीन भारतीय संस्कृति का पुनरुज्जीवन

भारतीय संस्कृति लगभग पाँच हजार वर्ष पुरानी मानी जाती है। इस लम्बे अन्तराल में विशेष रूप से अंतिम तीन हजार वर्षों में बहुत से शास्त्र, टीकाएँ, पुराण, महाकाव्य, मत, दर्शन, और बुद्धि को चकरा देने वाली बहुविध आध्यात्मिक ज्ञानराशि भारतीय संस्कृति में विकसित हुई। उन्नीसवीं शताब्दी के सुधारवादी आन्दोलन ने इस अमूल्य राशि के अधिकतर भाग की न केवल उपेक्षा की, बल्कि तिरस्कार कर दिया था।

यही वह ठीक समय था, जब स्वामी विवेकानद का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने भारत की अद्‌भुत और गरिमामयी संस्कृति को तिरस्कृत होने से बचाया। स्वामीजी ने एक क्रमबद्ध कार्यप्रणाली का अनुसरण किया, जिसे श्री अरविंद घोष 'पुनर्निर्माण के द्वारा संरक्षण' की संज्ञा देते हैं। स्वामीजी ने दिखाया कि प्राचीन भारत की धार्मिक परम्परा के दो आयाम हैं।

एक है 'तत्त्व' जो हिन्दू धर्म का प्राण है और अनादि काल से आध्यात्मिक सत्यों और आत्मतत्त्व की समष्टि है। ये सत्य ब्रह्माण्ड के पीछे परम सत्ता की उस तुरीय अवस्था को विवृत करते हैं, जिसे ब्रह्म कहते हैं, जो अनंत चैतन्यमय है और मनुष्य का मूल स्वभाव है और उसे आत्मा कहते हैं।

यही मानव का परम लक्ष्य है, यही मनुष्य के दुख-बन्धन का कारण भी है और उसकी मुक्ति और कृतकृत्यता का साधन भी है। ये सत्य प्राचीन ऋषियों के द्वारा आविष्कृत हुए, और समय-समय पर कई ऋषि और सन्तों के द्वारा अनुमोदित हुए। ये सत्य धार्मिक दर्शन का निर्माण करते हैं, जिन्हें वेदान्त कहते हैं।

दूसरा है, धर्म जो (सनातन) धर्म का बाह्य आवरण है, जो मूल्यों, रीति, अनुष्ठान, लोकाचार पर आधारित है और जिसमें देश, काल के अनुसार परिवर्तन होता रहता है।

स्वामी विवेकानन्द ने दिखाया कि लम्बे अंतराल के कारण अन्धविश्वास, अवांछित धार्मिक आचार और अनेक प्रकार की कुरीतियाँ, जैसे – छुआछूत, जातिप्रथा आदि धर्म के इस बाह्य आवरण के अंग बन गए। इनको बदलना जरूरी है, साथ ही धर्म का भीतरी सार, इसके अनादि सत्य और सिद्धांतो की अमूल्य राशि को जनसमूह के लिए उपलब्ध कराना होगा, इसका अभ्यास करना होगा तथा दैनंदिन जीवन में इसका अनुभव कर ऊर्जान्वित होना होगा। वर्तमान में यह कार्य श्रीरामकृष्ण ने कर दिखाया है। स्वामी विवेकानन्द ने अपने भ्रमण, लेखन और भाषण के द्वारा वेदान्त के अनादि सत्यों की अमूल्यता और इसकी उपयोगिता से जनमानस को न केवल अवगत कराया, बल्कि उन्हें सहज भाव में उपलब्ध भी कराया। इसके साथ ही उन्होंने धर्म के उपरोक्त बाह्य आवरण के दोष-निवारण के लिए भी जनमानस को सचेत किया। इस प्रकार से स्वामीजी ने भारतीय संस्कृति का पुनर्निर्माण और पुनरुज्जीवन किया।

आध्यात्मिक जागरण

स्वामी विवेकानन्द केवल प्रचारक और उपदेशक ही नहीं थे, बल्कि वे भारतीयों की आत्मा को जगाने वाले थे। अपने गुरु श्रीरामकृष्ण के इस महत कार्य के वे प्रधान प्रतिनिधि थे। जैसा कि हमने पहले देखा है कि प्रख्यात इतिहासविद् टायन्बी के अनुसार जब कोई सभ्यता पतनोन्मुखी होती है, तो इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप समाज की स्वशोधन-प्रणाली के द्वारा एक अभाव की सृष्टि होती है और किसी नायक का जन्म होता है। श्रीमद्भगवद्गीता भी इस सत्य की पुष्टि करती है कि जब-जब धर्म का ह्रास होता है, तब एक भगवद्विभूति, जिसे अवतार कहते हैं, अवतरित होती है, जिनके पास जगत को देने के लिए एक नया सन्देश होता है। स्वामी विवेकानन्द ने भी श्रीरामकृष्ण को 'युगावतार' की संज्ञा दी है। अपने सन्देश के द्वारा ही श्रीरामकृष्ण ने धर्म और संस्कृति के नवीनीकरण की नींव रखी थी। दिव्य आध्यात्मिक साधनों के फलस्वरूप श्रीरामकृष्ण ने अति विशाल आध्यात्मिक शक्ति पुंजीभूत कर ली थी और स्वामी विवेकानन्द इस विशाल राशि को जनमानस में वितरित करने के लिए उनके मुख्य वाहक थे।

स्वामीजी सर्वदा अनुभव करते थे कि भारतवर्ष के सर्वतोभावेन जागरण के लिए वे श्रीरामकृष्ण द्वारा ही परिचालित थे। उपनिषदों में हम ऋषियों का उद्घोष सुनते हैं ''उठो ! जागो ! और विज्ञजनों के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करो (उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत)। तीन हजार वर्षों के बाद हम पुन: देखते हैं – एक युवाऋषि को भारत भ्रमण करता हुआ, विश्व में दूर-दूर तक भ्रमण करते हुए जन साधारण को अमोघ उद्घोष के द्वारा जागृत करते हुए 'उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्त होने तक रुको नहीं'।

हमने देखा है कि प्रत्येक सभ्यता का एक वैशिष्ट्य अथवा प्रधान तत्त्व होता है और इस वैशिष्ट्य के अनुसार ही उसका आदर्श होता है। भारतवर्ष का वैशिष्ट्य है धर्म। स्वामीजी कहते हैं, ''इस पवित्र भूमि की नींव, इसका आधार, इसका प्राणस्रोत केवल धर्म ही है।'' अत: भारतवर्ष के उत्थान के सभी प्रयास चाहे वे सामाजिक या सांस्कृतिक उत्थान हों, यहाँ तक कि आर्थिक उत्थान भी धर्म पर आधारित होने चाहिए, क्योंकि यही न्यूनतम प्रतिरोध का मार्ग है।'' स्वामीजी ने कहा, ''भारत को उच्च समाजतांत्रिक और राजनीतिक विचारों से प्लावित करने से पहले आध्यात्मिक विचारों से प्लावित कर लो .... आओ ! इस दानशील देश में हम पहले प्रकार के दान अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार के लिए साहसपूर्वक अग्रसर हों ।''

यही वह आध्यात्मिक दृष्टिकोण, आध्यात्मिक दूरदृष्टि और आध्यात्मिक मार्गदर्शन है, जो स्वामी विवेकानन्द के विचारों को अन्य आधुनिक चिन्तकों के समाजतंत्रीय-राजनीतिक विचारों से पृथक करता है। वर्तमान में यह वैश्विक स्वीकृति के लिए कोरा आदर्शवाद या काल्पनिक प्रतीत हो सकता है, किन्तु स्वामी विवेकानन्द सत्य द्रष्टा थे, जो बहुत आगे तक मानवता के भविष्य को देखने की क्षमता रखते थे। मानवता आज एक नयी दहलीज पर है। इस पर हम आगे चर्चा करेंगे। अब हम स्वामी विवेकानन्द के आह्वान का उल्लेख करते हुए भारत की आत्मा के आध्यात्मिक जागरण के इस विषय का उपसंहार कर सकते हैं। उन्होंने आलमबाज़ार मठ में सन् १८९७ में अपने संन्यासी भाइयों से कहा था, ''उठो! जागो! स्वयं जागो और दूसरों को भी जगाओ। इससे पहले कि मृत्यु आ जाय मनुष्य जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करो। उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त होने तक रुको नहीं।'' **(क्रमशः)**

बालक मार्कण्डेय

प्रत्येक माता-पिता की यह इच्छा होती है कि उनके बच्चे गुणवान हों और वे समाज में उनका नाम रोशन करें। अच्छे गुणों से ही चरित्र का विकास होता है। यदि जीवन बहुत लम्बा हो, किन्तु उसमें अच्छे संस्कार न हों, तो ऐसा जीवन किस काम का? इसलिए बचपन से ही अच्छी आदतें, अच्छे संस्कार सिखाए जाते हैं। जो बच्चे माता-पिता, शिक्षक की बात मानते हैं, उनका चरित्र अच्छा बनता है और वे जीवन में सफल होते हैं। माता-पिता भी भगवान से ऐसे आज्ञाकारी बेटे-बेटियों के लिए प्रार्थना करते हैं।

इसी प्रकार की एक सत्य कथा हमारे पुराणों में आती है। मृकण्ड नाम के एक तेजस्वी गृहस्थ थे। उनकी पत्नी का नाम मरुद्वती था। उनकी कोई भी सन्तान नहीं थी। उनकी बहुत इच्छा थी कि उनके घर का आँगन बच्चे की किलकारियों से गूँज उठे। जिनका भगवान में विश्वास होता है, वे उनकी पूजा और तपस्या के द्वारा उनसे इच्छित वस्तु की प्राप्ति करते हैं। मृकण्ड मुनि और उनकी पत्नी ने भी पुत्र की प्राप्ति के लिए भगवान शंकर की पूजा आरम्भ की। वे प्रतिदिन भगवान शंकर की आराधना और व्रतों का पालन करते थे। भगवान शंकर उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर प्रकट हुए और कहा, ''क्या तुम अच्छे गुणों से रहित दीर्घायु पुत्र चाहते हो अथवा उत्तम गुणों वाला, किन्तु कम आयु वाला पुत्र चाहते हो?''

मृकण्ड मुनि ने कहा, ''भगवन् ! जिस पुत्र में अच्छे गुण नहीं हों, ऐसा पुत्र मुझे नहीं चाहिए। ऐसे पुत्र के लम्बे जीवन से किसी का क्या कल्याण हो सकता है। भले ही कम आयु वाला, किन्तु मुझे तो सदाचारी और गुणवान पुत्र चाहिए।'' भगवान शंकर उनकी प्रार्थना से प्रसन्न हुए और उन्हें वरदान दिया। कुछ समय के बाद माता मरुद्वती को सुन्दर पुत्र हुआ। बालक का नाम मार्कण्डेय रखा गया। भगवान शंकर जी के वरदान से बालक का जन्म हुआ था, इसलिए वे दिखने में भी शंकर जी के समान थे। माता-पिता के जीवन में मानो आनन्द का फव्वारा फूट पड़ा हो। बालक मार्कण्डेय बड़े होते गए। वे माता-पिता के बहुत आज्ञाकारी थे और अपना समय पूजा-पठन में ही बिताते थे। जैसे-जैसे वे बड़े होते गए, माता-पिता को अपने पुत्र की कम आयु का विचार चिन्तित कर देता था। मार्कण्डेय के पिता जानते थे कि उनका बेटा केवल सोलह वर्ष तक ही जी सकता है। दुखी मन से उन्होंने यह बात मार्कण्डेय को बताई। किन्तु मार्कण्डेय इससे विचलित नहीं हुए। पिता ने उन्हें महामृत्युंजय मन्त्र का जप करने और भगवान शंकर से प्रार्थना करने के लिए कहा। साथ ही यह भी कहा कि कोई भी संत-ब्राह्मण मिले, तो उन्हें प्रणाम करना।

मार्कण्डेय की मृत्यु के दिन निकट आ रहे थे। वे एकाग्र मन से भगवान शंकर की आराधना में लग गए। जो भी ऋषि-मुनि-संत-ब्राह्मण दिखते, मार्कण्डेय उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते। इसी प्रकार एक बार सप्तर्षिगण मार्कण्डेय जी की पूजा-स्थली से जा रहे थे। उन्होंने ऋषियों को प्रणाम किया। प्रत्येक ऋषि ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि उनकी उम्र लम्बी हो। ऋषियों ने आशीर्वाद तो दे दिया, किन्तु उनमें से एक ने कहा, ''हमने इस बालक को लम्बी आयु का आशीर्वाद तो दे दिया है, किन्तु इसके ललाट पर इसकी आयु केवल तीन दिन ही बाकी लिखी है।'' जो भी हो, ऋषियों को लगा कि जब उन्होंने स्वयं मार्कण्डेय को दीर्घायु का आशीर्वाद दिया है, तो वह व्यर्थ नहीं जाएगा।

ऋषिगण मार्कण्डेय को लेकर ब्रह्माजी के पास गए। ब्रह्माजी ने कहा कि केवल देवाधिदेव महादेव ही इसके भाग्य को बदल सकते हैं। बालक मार्कण्डेय तो अब दिन-रात भगवान शंकर की आराधना में लग गए। अन्तिम दिन काल मार्कण्डेय को लेने आया और उनके गले में मृत्यु का फंदा डाला। मार्कण्डेय उस समय तन्मयता से भगवान शंकर की स्तुति कर रहे थे। इतने में शिवलिंग से भगवान शंकर प्रकट हुए और उन्होंने काल पर जोर से प्रहार किया। भगवान शंकर ने मार्कण्डेय की स्तुति से प्रसन्न होकर उन्हें चिरंजीवी होने का वरदान दिया। ○○○

जैसा सोचेंगे, वैसा बनेंगे

स्वामी मेधजानन्द

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''तुम जो कुछ सोचोगे, वही हो जाओगे; यदि तुम स्वयं को दुर्बल सोचोगे, तो दुर्बल हो जाओगे; यदि तुम अपने को अपवित्र सोचोगे, तो अपवित्र हो जाओगे। इससे यह शिक्षा मिलती है कि हम स्वयं को दुर्बल न समझें, अपितु अपने को बलवान, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ मानें। भले ही यह भाव हममें अब तक प्रकट न हुआ हो, पर हममें है अवश्य। हमारे भीतर सम्पूर्ण ज्ञान, सारी शक्तियाँ, पूर्ण पवित्रता और स्वाधीनता के भाव विद्यमान हैं। फिर हम इन्हें अपने जीवन में व्यक्त क्यों नहीं कर सकते? इसलिए कि उन पर हमारा विश्वास नहीं है।''

संसार में सबकुछ मन का ही खेल है। दुर्बलता की उत्पत्ति मन में होती है और उसका नाश भी मन में ही होता है। यद्यपि शरीर और मन, दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं, उसमें भी मन यदि शक्तिशाली रहे, तो रोग-शोक उसे प्रभावित नहीं कर सकते। प्राय: ऐसा देखा जाता है कि जो व्यक्ति मन से दुर्बल होते हैं, उन्हें बीमारियाँ भी अधिक होती हैं। वे छोटी-छोटी बीमारियों में भी विचलित हो जाते हैं। वीर योद्धा को बाह्य दृष्टि से भले ही कभी-कभी पराजय का मुँह देखना पड़े, किन्तु वह अपने आत्म-विश्वास के बल पर दुगुने उत्साह से युद्ध की तैयारियों में लग जाता है। चाणक्य, शिवाजी महाराज, महाराणा प्रताप इत्यादि महापुरुषों को भी कुछ क्षेत्रों में पराजय स्वीकार करनी पड़ी थी, किन्तु वे मन से बलवान थे और उसी दिव्य बल के द्वारा अपने महान कार्यों में सफल हुए थे।

एक व्यक्ति प्रसन्न और स्फूर्त मन से अपने कार्यालय जा रहा था। कार्यालय में उसके मित्रों ने कुछ शरारत करने की सोची। जैसे ही वह ऑफिस पहुँचा, किसी ने उससे पूछा, ''क्या बात है, आज तुम्हारा चेहरा मुरझाया हुआ लग रहा है, क्या तुम्हें बुखार है?'' उसने दृढ़ता से कहा, ''नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।'' कुछ समय बाद किसी दूसरे ने पूछा, ''अरे, तुम रोज की तरह आज स्वस्थ नहीं लग रहे हो, ऐसा लग रहा है कि तुम्हें बुखार है।'' उसने फिर से कहा कि वह बिल्कुल स्वस्थ है। कुछ देर बाद तीन-चार मित्रों ने भी वही बात दोहराई। अब उससे रहा नहीं गया। वह बार-बार अपना चेहरा दर्पण में देखने लगा। अपने सिर पर हाथ रखकर देखने लगा कि कहीं सचमुच बुखार तो नहीं हो गया है! और आश्चर्य की बात कि उसे सचमुच लगने लगा कि बुखार हो गया है। वह दवाई की दुकान में गया और जब ६५० एम.जी. की पैरासीटेमोल की गोली खाई, तब उसका बुखार उतरा !

अपने जीवन की छोटी-छोटी बातों में भी हम कुछ कुण्ठाएँ बना लेते हैं। हम सोचते हैं कि अमुक परिस्थिति में अमुक कार्य नहीं कर सकेंगे और बाद में यह हमारा स्वभाव हो जाता है। मानव जीवन में साहस, पवित्रता, आत्म-विश्वास, धैर्य, क्षमा इत्यादि दैवी गुणों के हम उत्तराधिकारी हैं। भले ही ये सब गुण वर्तमान में हमें प्रतीत नहीं हो रहे हैं, किन्तु हमारा दिव्य स्वरूप इन सभी उदात्त गुणों की समष्टि है। स्वामी विवेकानन्द तो यहाँ तक कहते हैं कि बार-बार यह कहते रहो कि तुम मुक्त हो, यदि अगले क्षण फिर से दुर्बलता के विचार आएँ, तो भी यह कहते रहो कि तुम मुक्त हो। इस प्रकार पुन: पुन: प्रयास के द्वारा हमने वर्षों से अपने मन में जो दुर्बलता की परतें बनाई हैं, वे टूटती जाती हैं।

सकारात्मक विचारों की शक्ति इतनी महान है कि व्यक्ति अपनी समस्त दुर्बलताओं को दूर कर सकता है। स्वामीजी कहते हैं, ''I feel as if a thunderbolt strikes me on the head when I hear people dwell on negative thoughts. – जब मैं सुनता हूँ कि व्यक्ति नकारात्मक विचार सोच रहा है, तो ऐसा लगता है मानो मेरे सिर पर वज्रपात हो रहा हो।'' यह हमारे ही हाथ में है कि या तो हम नकारात्मक चिन्तन कर अपना जीवन व्यर्थ गँवा दें अथवा सकारात्मक चिन्तन प्रणाली से स्वयं का और जगत का कल्याण करें।

अष्टावक्र-गीता में मुनि कहते हैं, ''मुक्ताभिमानी मुक्तो हि बद्धो बद्धाभिमान्यपि। किंवदन्तीह सत्येयं या मति: सा गतिर्भवेत्॥'' अर्थात जो स्वयं को मुक्त समझता है, वह मुक्त ही है और जो स्वयं को बद्ध समझता है, वह बद्ध ही है। यह कहावत सत्य है कि जैसी मति होती है, वैसी ही गति होती है। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (३१)

स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न – महाराज ! एक बार एक भक्त ठाकुर को कह रहे हैं – मुझे कोई भाव-टाव नहीं हो रहा है, कुछ कीजिए। ठाकुर कहते हैं – अरे तुम कैसी बात कर रहे हो? भाव-टाव बहुत छोटी वस्तु है। ठीक-ठीक त्याग-वैराग्य होना, बहुत बड़ी बात है। देखो न, नरेन्द्र को भाव-टाव नहीं होता, किन्तु कैसा उसका त्याग-वैराग्य है! महाराज! क्या भाव होना आध्यात्मिक उन्नति का परिचायक नहीं है?

महाराज – नहीं, भाव आध्यात्मिक उन्नति का माप-दण्ड नहीं है। क्या बात-बात में भाव होने से ही हुआ? क्या त्याग-वैराग्य इससे अधिक अच्छा मापदण्ड नहीं है?

प्रश्न – महाराज, क्या भाव त्याग-वैराग्य के बिना होता है?

महाराज – हाँ, होता है। सुनो, उदाहरण दे रहा हूँ। स्वामीजी ने अपनी आँखों से देखा है कि लोग दर्पण के सामने बैठकर ठाकुर के भाव का अनुकरण कर रहे हैं। एक बार चैतन्यदेव के किसी भक्त को भाव हुआ था। वह मिट्टी में लोट रहा था। इधर चैतन्यदेव को भी भाव हुआ। अन्य भक्त चैतन्यदेव की सेवा के लिये दौड़ पड़े। उधर जिस भक्त को भाव हुआ था, वह कह रहा था – प्रभु को भाव हुआ, तो सभी उनकी सेवा करने दौड़े, मुझे भी भाव हुआ, किन्तु कोई भी सेवा करने नहीं आया। बल्कि मुझे पैर से मारकर सभी प्रभु के पास दौड़े। तब देखो, कैसी अवस्था है !

– महाराज ! वह तो अनुकरण या लोक-प्रदर्शन का भाव था। किन्तु यदि ठाकुर की कोई भक्त-सन्तान भाव की इच्छा कर रहे हैं, तो वे त्याग-वैराग्यहीन भाव नहीं चाह रहे हैं !

महाराज – ठीक है। किन्तु केवल भाव ही होने से नहीं होता। उसके साथ जीवन में परिवर्तन होगा। वही मापदण्ड है।

प्रश्न – महाराज ! जप-ध्यान करने पर नींद आ जाती है। ऐसा क्यों होता है?

महाराज – जप-ध्यान जप करते समय जो नींद आती है, यह तमोगुण के प्रभाव से होता है। ऐसा दो कारणों से होता है। पहला – शारीरिक क्लान्ति और दूसरा जप-ध्यान में रुचि नहीं होना।

– महाराज! इसे किस उपाय से दूर किया जा सकता है?

महाराज – पहला, शारीरिक क्लान्ति होने पर यथोचित विश्राम करने की आवश्यकता है। शरीर को जितने समय विश्राम या जितनी निद्रा की आवश्यकता है, उतना करना चाहिए। यदि थोड़ी देर से उठने पर अच्छा जप-ध्यान होता है, अर्थात शरीर में थकावट नहीं होती, तो वही करना अच्छा है। यद्यपि संघ जीवन में वैसी दिनचर्या सम्भव नहीं है। यहाँ सबको एक जैसी दिनचर्या का ही अनुसरण करना पड़ता है। किन्तु सब बातें प्रत्येक व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक गठन के ऊपर निर्भर करती हैं। जिसको जैसा करने से अच्छा लगे, वैसा ही करना चाहिए।

दूसरी बात है – रुचि न होना। रुचि न होने से मन निद्रामग्न हो जाता है। जप-ध्यान में मन नहीं लगने का कारण है – लक्ष्य के सम्बन्ध में सजग नहीं होना। इसका अर्थ है कि हमें उसमें आनन्द नहीं मिल रहा है। इसलिए मन सो जाता है। आँख-मुँह को अच्छी तरह पानी से धोकर बैठकर सजग रहने का प्रयास करना चाहिए। ध्यान-जप करने के लिए आसन पर बैठते ही बेगार टालने जैसे माला नहीं जपना चाहिए। जैसाकि कहते हैं, पहले चुपचाप बैठकर मन का निरीक्षण करना चाहिए कि यह कहाँ जा रहा है इत्यादि। इस प्रकार कुछ क्षण करने के बाद, थोड़ा मन के शान्त होने पर जप-ध्यान आरम्भ करना चाहिए। ऐसा अचानक एक दिन में नहीं होता है। इसके लिये मन की तैयारी आवश्यक है।

– कैसे मन को तैयार किया जा सकता है?

महाराज – जब लगे कि ध्यान के लिये बैठते ही नींद आ रही है, इसका अर्थ है कि मन अभी भी ध्यान हेतु तत्पर नहीं है। उसके लिए कर्म है। जब कर्म करने के बाद

लगे कि तमोगुण चला गया है, मन शुद्ध प्रतीत हो, तब जप-ध्यान करना अच्छा है। सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, साधुसंग करने का थोड़ा अभ्यास करना अच्छा है। ये सब करते-करते थोड़ी रुचि होने पर रसानुभूति होगी। रसानुभूति न होने पर केवल यन्त्रवत् लगेगा। रसानुभूति होने पर तो हो ही गया। इन सबसे यही समझ में आता है कि इस पथ को हम लोगों ने जितना सीधा सरल समझा था, उतना सीधा नहीं है। जब श्रीरामकृष्णवचनामृत पढ़ता था, तो लगता था कि अब थोड़ी देर बाद ही समाधि लग जायेगी ! कौन जानता था कि ये सब इतना कठिन है ! किन्तु इससे निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं है। इससे हमें यही शिक्षा लेनी होगी कि शीघ्र कुछ होने की आशा न कर धैर्यपूर्वक प्रयास करते रहना होगा। यह जानना होगा कि इसके लिये अपार धैर्य की आवश्यकता है। आज नहीं होगा, कल नहीं होगा, किन्तु एक दिन हमें सफलता मिलेगी। कोई भी प्रयत्न व्यर्थ नहीं जाता। 'मैं धैर्य के साथ प्रयास करते जाऊँगा' ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा चाहिए। मुझे अपने जीवन की बहुत-सी बातें याद आ रही हैं। मन को कितनी सजा दी है। जब नींद आती थी, तो उठकर चलने लगता था, चलते-चलते सो जाता था। मन को कितने प्रकार से परिश्रम कराया हूँ। तुम लोगों से बात करते-करते कई बार मेरे जीवन की जो बातें भूल गई थीं, वे पुनः याद आ रही हैं। (महाराज ने कहा) बोलो, बोलो। जल्दी से बोलो। समय बीत रहा है। अभी (सेवक) आकर कहेगा, उठो, उठो। फिर भी जानते हो क्यों कह रहा हूँ?

(महाराज बहुत गम्भीर होकर कहने लगे) दिन बीत गया। समय बीतता जा रहा है। देखो, जीवन अपनी पूरी शक्ति से बहुत तीव्र गति से ध्वंस की ओर अग्रसर हो रहा है। कल क्या होगा, नहीं जानते। बाद के क्षण में क्या होगा, नहीं जानते।

आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं,
प्रत्यायान्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षणः।
लक्ष्मीस्तोयतरंगभंगचपला विद्युतच्चलं जीवितं,
तस्मान्मां शरणागतं शरणद त्वं रक्ष रक्षाधुना।।

(शिवापराधक्षमापनस्तोत्र- १३)

जो दिन बीत गया, वह वापस नहीं आयेगा। जीवन में व्याकुलता लाओ, व्याकुल होओ। प्रत्येक पल का उपयोग करो। एक पल भी व्यर्थ न चला जाय। मृत्यु केशाग्र को पकड़ी हुई है। तब क्या तुम यह कहोगे कि – रुको मैं अपने बाल ठीक से सँवार लूँ? जिस दिन गृह-त्याग कर आए थे, उस दिन की व्याकुलता को याद करो। मुझे स्मरण हो रहा है, पहना हुआ कपड़ा निकालकर दूसरा एक छोटा कपड़ा पहन रहा हूँ। रात में घर से भागूँगा। शीघ्रता में हाथ-पैर काँप रहा है। डर लग रहा है कि देर होने से बाद में कहीं सभी लोग जाग न जायँ ! तब संसार छोड़ने की योजना असफल हो जायेगी। जिस दिन घर छोड़कर आया था, उस दिन की व्यग्रता, उस दिन की व्याकुलता की बात बीच-बीच में सोचना। बीच-बीच में अकेले बैठकर ऐसा सोचना। ठाकुर के जीवन को देखो न – निरंजन के ईश्वर-दर्शन के लिये वे कितने व्याकुल हैं ! ओह ! कितनी चिन्ता कर रहे हैं ! कह रहे हैं – दिन बीते जा रहे हैं, तुम कब ईश्वर दर्शन करोगे? भगवान बुद्ध ने कहा है – संसार में सर्वत्र अग्नि जल रही है, ऐसा मन में लगना चाहिए। ज्वारभाटा आयेगा, सुनकर ठाकुर गंगा के किनारे गये हैं। बालकों को भी पुकार रहे हैं – अरे राखाल ! आओ, आओ, ज्वारभाटा देखने आओ। उन लोगों के आने के पहले ही ज्वारभाटा आकर चला गया। ठाकुर ने रुष्ट होकर कहा – अरे छोकड़े! तुम्हारे कपड़े पहनने के लिए क्या ज्वारभाटा बैठा रहेगा? यही देखो न, मैं बगल में कपड़ा दबाये दौड़े चला आया हूँ। देखो, कितनी व्याकुलता है ! कहीं सुअवसर न चला जाय। समझे? जीवन में व्याकुलता लाने की आवश्यकता है। व्याकुलता नहीं हो रही है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ३१२ का शेष भाग

भी शुद्ध करना होगा। जाति-प्रथा मन में भगवान की भक्ति होने पर मिटेगी। श्रीरामकृष्ण देव ने कहा था – भक्त की कोई जाति नहीं होती। जब हम भगवान के भक्त हैं, तो आप और हम समान हैं। आप भी भगवान के भक्त हैं, हम भी भगवान के भक्त हैं। हमारी एक ही जाति है और वह है भक्त की जाति। यदि जाति-प्रथा मिटानी हो, तो भगवान के प्रति श्रद्धा-भक्ति जगानी पड़ेगी। जब जाति प्रथा मिट जायेगी, तब समाज के दोष स्वयं मिट जायेंगे। केवल ढिंढोरा पीटकर या कानून बनाकर समाज के दोषों को नहीं मिटाया जा सकता। इसलिए श्रीरामकृष्ण देव ने जीवन में धर्म को प्रतिष्ठित करने की बात कही है, धर्माचरण करने की बात कही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीरामकृष्ण देव ने सबमें नारायण को देखकर सभी जातियों, सभी धर्मावलम्बियों से प्रेम किया और समाज में समरसता और सौहार्द की स्थापना की। **(समाप्त)**

श्रीमत्सुरेश्वराचार्यविरचिता

नैष्कर्म्यसिद्धिः

व्याख्याकार : स्वामी धीरेशानन्द, सम्पादन : स्वामी ब्रह्मेशानन्द

सर्वकर्म-प्रवृत्ति का हेतु स्वस्वरूप-आनन्दस्वरूप आत्मा का अज्ञान है।

विभिन्न प्रकार के कर्म में प्रवृत्ति अज्ञान द्वारा होती है ।

प्रतिषिद्ध कर्म - पापकर्म, यादृच्छिक कर्म जैसे स्वेच्छा से सोये रहना। इनमें प्रवृत्ति का कारण है, ''यह हितकर है, यह अहितकर है इत्यादि'', इस प्रकार की मृगतृष्णा सदृश परिकल्पना। काम्य, नित्य कर्म में प्रवृत्ति अदृष्ट फल की प्राप्ति के लिये पूर्वोक्त प्रकार होती है। उपरोक्त प्रकार से कर्म में प्रवृत्ति प्रमाणसिद्ध आत्म-स्वरूप के अनवबोध के कारण है।

आत्मा आनन्द स्वरूप है - उसके प्रमाण

(१) प्रत्यक्ष अनुभव – जैसे सुषुप्ति का निर्विषय आनन्द

(२) अनुमान – आत्मा का परमप्रेमासादत्व ।

(३) श्रुति – 'एषोऽस्य परम आनन्द', 'आत्मैवानन्द' आदि अनेक श्रुतिप्रमाण हैं। इसके अनवबोध से हित में दुख-जिहासा होती है। शास्त्र उपरोक्त दुखनिवृत्ति तथा सुख प्राप्ति के मात्र उपाय बता देते हैं। किन्तु कर्तृत्व, भोक्तृत्व, वर्णाश्रम, वय:, अवस्था आदि का अभिमान मनुष्य में स्वत: पूर्वजन्म के संस्कारों से उदित होता है। इसके लिए शास्त्र उत्तरदायी नहीं है। उसी प्रकार शास्त्र कर्म में प्रवृत्ति या निवृत्ति जनक नहीं हैं। वे केवल अज्ञात ज्ञापक हैं। शास्त्र पदार्थ में शक्ति आधान नहीं करते, अर्थात् आत्मा में कर्तृत्व, भोक्तृत्वादि शक्ति, स्वर्गादि में साध्यत्व, त्यागादि में साधनत्व, नहीं देते किन्तु प्रकाशमात्र करते हैं। ये शक्ति तो स्वभाव से होती है, जैसे पशुओं में भी देखा जाता है। गाय हरी घास को पसन्द करती है, आदि।

आत्मवस्तुस्वभाव की पर्यालोचना, विचार या ज्ञान से प्रवृत्ति असंभव है यह अगले श्लोकों में बताया गया है। इसके लिये सर्वप्रथम प्राप्तव्य या प्राप्त और परिहार्य, इन दोनों में से प्रत्येक के दो प्रकार बताते हैं :

लिप्सतेऽज्ञानतो लब्धं कण्ठे चामीकरं यथा।
वर्जितं च स्वतो भ्रान्त्या छायायामात्मनो यथा।।३१।।
भयान्मोहावनद्धात्मा रक्ष:परिजिहीर्षति।
यच्चाऽपरिहृतं वस्तु तथाऽलब्धं च लिप्सते।।३२।।

मनुष्य कण्ठ में डले हुए सुवर्ण हार को अज्ञान से न जान कर उसकी पाने की इच्छा करता है। स्वयं की छाया में राक्षस न होते हुए भी भ्रान्तिवश, भय से, मोह से आवृत अन्त:करण वाला मनुष्य उसे दूर करने की जिस प्रकार इच्छा करता है, उसी प्रकार व्याघ्रादि उपस्थित वस्तुओं को तथा वित्तादि अप्राप्त वस्तुओं को क्रमश: दूर करने तथा पाने की इच्छा करता है।

इस प्रकार चार प्रकार की वस्तुएँ हो गयीं :

१. प्राप्त प्राप्य जैसे गले का हार

२. अप्राप्त प्राप्य जैसे वित्तादि

३. परिहृत परिहार्य जैसे छाया में राक्षस

४. वर्तमान अपरिहृत, परिहार्य चोर, व्याघ्रादि

प्राप्तव्य व परिहार्य वस्तुओं के दो दो प्रकार : अप्राप्त की प्राप्ति और वर्तमान का परिहार। ये दोनों कर्म से होते हैं, प्राप्त की प्राप्ति और अवर्तमान का परिहार, ये दोनों ज्ञान से होते हैं।

प्रथम दो की सिद्धि शास्त्र द्वारा उपाय जानकर क्रिया द्वारा होती है, यथा –

प्राप्तव्यपरिहार्येषु ज्ञात्वोपायान् श्रुतेः पृथक्।
कृत्वाऽथ प्राप्नुयात्प्राप्यं तथाऽनिष्टं जहात्यपि।।३३।।

वस्तुत: अप्राप्त स्वर्गादि अथवा नरकादि गमन की प्राप्ति अथवा परिहार का उपाय यज्ञ दानादि क्रिया, शास्त्र से जानकर उनका अनुष्ठान करके उनकी सिद्धि की जाती है।

बाकी बचे दो की प्राप्ति अथवा दूरीकरण ज्ञान से होता है ।

वर्जितावाप्तयोर्बोधाद्धानप्राप्ती न कर्मणा
मोहमात्रान्तरायत्वात् क्रियया ते न सिद्ध्यतः।।३४।।

स्वभाव से ही वर्जित अथवा प्राप्त वस्तु की हानि या निवृत्ति अथवा लाभ ज्ञान से होता है, कर्म से नहीं। मोहमात्र अंतराय होने से वे क्रिया से दूर या सिद्ध नहीं होते।

(क्रमशः)

ईशावास्योपनिषद (७)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उन्होंने यह प्रवचन संगीत कला मन्दिर, कोलकाता में दिया था। – सं.)

उस तत्त्व के सम्बन्ध में कहा गया, उसमें कम्पनशीलता नहीं है, वह एक तत्त्व है, वह मन से भी अधिक गतिमान है। मन से भी अधिक गतिमान का क्या अर्थ है? कहते हैं कि आत्मतत्त्व खड़ा है और जो वस्तुएँ भाग रही हैं, वह खड़ा होकर भी उनको पार कर जाता है। इसे समझने के लिए आप थोड़ी कल्पना करें। जैसे ईथर में हीट है, यह electricity है transmission के लिए, यह magnetism है, हम एक ऐसे आधार के रूप में, substratum के रूप में कल्पना करते हैं। ईथर तो वैसे कुछ नहीं है। पहले कल्पना की गई कि कोई एक माध्यम है, जिससे यह सब संचारित होता है। ऐसी अगर आप ईश्वर के समान एक कल्पना करें, तो समझ सकते हैं। वस्तुएँ भाग रही हैं, तो कहाँ भाग रही हैं? आत्मा में ही भाग रही हैं। आत्मतत्त्व सबके भीतर में भिदा हुआ है। किसकी शक्ति से शक्तिमान बनकर इन्द्रियाँ पकड़ना चाहती हैं? आत्मतत्त्व की ही शक्ति है। नेत्रेन्द्रियाँ पकड़ना चाहती हैं कि मैं आत्मतत्त्व को देखूँगी, तो यह चक्षुरिन्द्रिय है। वहाँ आत्मतत्त्व पहले ही गया हुआ है। यदि आत्मतत्त्व न हो, तो कोई भी इन्द्रिय काम नहीं कर पायेगी। आत्मतत्त्व की विद्यमानता के कारण हर वस्तु काम करने में समर्थ होती है। उसको इस ढंग से व्यक्त किया गया। मन से भी अधिक गतिमान का क्या मतलब है? मन खूब जोरों से दौड़ा कि मैं आत्मतत्त्व को पकड़ लूँगा। किन्तु जाकर के देखता है कि आत्मतत्त्व तो पहले से विद्यमान है। जहाँ तक मन जायेगा, आत्मतत्त्व तो वहाँ पर विद्यमान है ही। इसी को यहाँ पर figurative language में, एक रूपक के माध्यम से हमारे समक्ष रखने की चेष्टा की गयी है।

वह मन से भी अधिक गतिशील है कैसे? कहते हैं कि जो विचार-प्रवाह है, जिसे हम विचार-शक्ति भी कह सकते हैं, वह बहुत गतिशील माना जाता है। विचार की गति प्रकाश की गति से भी अधिक मानते हैं। विचार प्रकाश से भी अधिक सूक्ष्म है। स्नायु-प्रवाह या स्नायु की गति तो अधिक सूक्ष्म है ही। स्नायु प्रवाह, स्नायु की गति का क्या अर्थ है? जैसे मान लीजिए मेरे अँगूठे में कहीं पर कोई चोट लगी। चोट की संवेदना मस्तिष्क में जाती है। कैसे जाती है? मान लीजिए मेरी ऊँचाई साढ़े छः फुट हो, तो लगभग छः फुट की दूरी हो गयी। अँगूठा इतने नीचे और मस्तिष्क उतना ऊँचा है। चोट की संवेदना अँगूठा से मस्तिष्क लेकर यहाँ तक जायेगा, तो कितना समय लगेगा। कहा गया है .01 सेकेन्ड समय लगेगा। छः फुट की दूरी पर अवस्थित वह संवेदना मस्तिष्क के उस केन्द्र में लगभग .01 सेकेन्ड में पहुँच जायेगी। हमने कहा स्नायु-संवेदना की गति अधिक है। Jet plane की भी अपनी गति होती है। .01 सेकेन्ड में छः फुट संवेदना का पहुँचना, यह कोई विशेष बात नहीं है। विचार प्रकाश से भी सूक्ष्म है। विचार की गति प्रकाश से भी अधिक है। ऐसे मन की गति से भी अधिक गतिमान यह आत्मतत्त्व है। यह वैतर्किक प्रणाली से बताया गया।

वह आत्मतत्त्व कम्पनशील नहीं है, उसमें किसी प्रकार का कम्पन नहीं है। परन्तु वह मन से भी अधिक गतिशील है। इसका मतलब कि मन जहाँ जाता है, वहाँ जाकर के देखता है कि आत्मतत्त्व पहले से ही अवस्थित है। आत्मतत्त्व की विद्यमानता के कारण मन का वहाँ पर पहुँच पाना सम्भव होता है। उसी प्रकार जब ये देवता, ये इन्द्रियाँ आत्मतत्त्व को पकड़ने के लिए जाती हैं, तो देखती हैं कि जहाँ भी ये पहुँचती हैं, आत्मतत्त्व तो उनके आगे ही निकला हुआ है। इसलिये ये इन्द्रियाँ आत्मतत्त्व को पकड़ नहीं पायीं। इसी को भिन्न उपनिषदों में भिन्न शब्दों में कहा गया है, जैसे कि अवाङ्मनसगोचर, न तत्रचक्षुर्गच्छति, न वाग्गच्छति, इत्यादि। वहाँ पर आँखें नहीं जा पाती, कान नहीं जा पाता, मन नहीं जा पाता, भिन्न-भिन्न भाषा में, भिन्न-भिन्न वाक्य रचना में, इस आत्मतत्त्व की सूक्ष्मता को रखा गया है ।

इसी बात को श्रीरामकृष्ण कैसे कहते हैं? उन्होंने सहज शब्दों में इस आत्मतत्त्व के सम्बन्ध में, ब्रह्म के सम्बन्ध में कहा – देखो रे ! सारी चीजें संसार की जूठी हो गईं, पर एक ब्रह्म वस्तु जूठी नहीं हो पायी। कोई नहीं बता पाया मुँह से कि ब्रह्म वस्तु कैसी है? यह ब्रह्म कैसा है? जूठा

का मतलब? उन्होंने कहा कि वेद, वेदान्त, शास्त्र सब जूठे हो गये, अर्थात् जिसका स्पर्श होठों से हो जाये, वह वस्तु जूठी हो जाती है। वेदों को, शास्त्रों को हम पढ़ लेते हैं, इसलिये पढ़ने के कारण वेद और शास्त्र जूठे हो गये। पर वाणी के सहारे आज तक कोई यह नहीं बता पाया कि ब्रह्म कैसा है? इसीलिए श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि दुनिया की सारी चीजें जूठी हो गयीं, एक ब्रह्म ही ऐसा है, जो जूठा नहीं हो पाया, कोई उसे बता नहीं पाया। यह भी कहने का एक तरीका है।

यहाँ पर यह कहा गया कि तद्धावत: अन्यान् अत्येति तिष्ठति – वह आत्मतत्त्व भागती हुई चीजों को खड़े होकर के ही पार कर लेता है। इसका मतलब कि चीजें उसमें ही तो भाग रही हैं। जैसे आप सिनेमा का पर्दा देखते हैं। अब क्या कहेंगे? यह सिनेमा का जो पर्दा है, वह खड़ा होकर के ही भागती हुई सारी चीजों को पार कर लेता है। पर्दे में कितनी चीजें भाग रही हैं। मोटर साइकिल वाला भाग रहा है, हवाई जहाज वाला भाग रहा है। कितनी चीजें आपको पर्दे में भागती हुई दिखाई देती हैं। परन्तु यह पर्दा कैसा है? खड़ा है और खड़ा हो करके सब भागती हुई चीजों को पार कर लेता है। ठीक इसी प्रकार यह जो आत्मतत्त्व है, यह स्थिर है और ये जितनी चीजें भाग रही हैं, उसी के भीतर भाग रही हैं।

उसके बाद कहते हैं, तस्मिन् अप: मातरिश्वा दधाति। उस आत्मतत्त्व के रहने के कारण, उसकी अवस्थिति के कारण, यह जो मातरिश्वा है, यह जो cosmic energy है, सबको उसने कर्म के अनुसार गुण प्रदान किया है, यही जीवों को ठीक कर्म करने के लिए प्रेरित करती रहती है। श्रीरामकृष्ण के दो-तीन उदाहरण तो बहुत सुन्दर हैं। एक उदाहरण यह है। जैसे घर में लड़की की शादी हो रही है। घर का मुखिया अपनी कुर्सी पर चुपचाप बैठा हुआ हुक्का गुड़गुड़ा रहा है। यह भी विचित्र है ! वह कोई काम करते हुये दिखाई नहीं देता, पर उसकी इच्छा के बिना कुछ नहीं हो सकता। गृहिणी आकर सब बात बता रही है कि अमुक-अमुक काम हो रहा है। उस गृहपति ने केवल सिर हिला दिया। जैसे गृहपति कुछ करता हुआ नहीं दिखाई देता है, परन्तु उसकी इच्छा के बिना कुछ नहीं हो सकता, ठीक वैसे ही यह आत्मतत्त्व है। यह जो cosmic energy है, वह जो कुछ भी करेगी, पूछकर ही करेगी। उसकी अवस्थिति के कारण सभी कार्य ठीक ढंग से सम्पन्न होते हैं, यह यहाँ पर कहा गया है। एक दूसरे ढंग से भी इसे समझा जा सकता है ! दूसरा उदाहरण श्रीरामकृष्ण देते हैं। वे कहते हैं कि देखो ! आग जल रही है। कड़ाही में आलू और परवल दोनों उबल रहे हैं। छोटा-सा लड़का कहता है, देखो माँ ! आलू और परवल कितने उछल रहे हैं ! माँ कहती है – हाँ बेटे ! उछल रहे हैं। जब माँ ने नीचे से जलती हुई लकड़ी को हटा दिया, तो आलू और परवल का उछलना बन्द हो गया। इसके माध्यम से बताते हैं कि आलू और परवल अपने आप नहीं उछल रहे हैं। इस आग, इस ताप के कारण ये उछलते दिखाई दे रहे हैं। जैसे ही ताप को दूर कर दिया गया, आलू और परवल का उछलना बन्द हो गया। वैसे ही आत्मतत्त्व की अवस्थिति के कारण सभी प्राणी अपने-अपने कर्म में लगे दिखाई देते हैं। कहीं पर व्यतिक्रम नहीं दिखाई देता है।

कठोपनिषद में बहुत सुन्दर, अद्भुत वर्णन आया है – **भयादस्याग्निस्तपति भयात् तपति सूर्य:। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चम:।।** यह तो मानों भीति की भावना है । ऐसा लगता है कि ब्रह्मतत्त्व निर्लिप्त खड़ा है, परन्तु उसके भय के कारण अग्नि प्रज्वलित होती है, वायु बह रही है, मृत्यु अपना कार्य करती है। भिन्न-भिन्न प्रकार से इस आत्मतत्त्व का निरूपण किया गया। **(क्रमश:)**

पृष्ठ २९६ का शेष भाग

नरेन्द्रनाथ किसी का प्रवचन सुनने गये। प्रवचनकार ने कहा कि हनुमानजी केले के वन में रहते हैं। जब नरेन्द्रनाथ ने सुना, तो वे कथा समाप्त होने के बाद वापस आते समय केले के वन में छिपकर हनुमानजी के दर्शन की प्रतीक्षा करने लगे, किन्तु बहुत देर बाद तक हनुमानजी नहीं आये। उन्होंने वापस आकर लोगों को यह घटना बतायी। तब लोगों ने विनोद में कहा, अरे बिले, लगता है आज हनुमानजी भगवान के कार्य से कहीं चले गये होंगे।

सबके प्रति प्रेम और सौहार्द – छात्र के रूप में स्वामी विवेकानन्द में इन सभी गुणों के साथ एक सर्वश्रेष्ठ गुण था – सबके साथ प्रेम। वे अपने परिवार, मोहल्ले और स्वजन-परिजन, सगे सम्बन्धी सबको बहुत प्रेम करते थे और वे लोग भी इन्हें प्रेम और वात्सल्य प्रदान करते थे।

इस प्रकार स्वामीजी छात्रावस्था से ही सर्वांगीण विकसित व्यक्तित्व वाले थे। उनका विद्यार्थी जीवन सभी विद्यार्थियों के लिए प्रेरणा का स्रोत है। ○○○

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (३१)

स्वामी भास्करानन्द, वेदान्त सोसायटी, वाशिंग्टन

अनुवाद : ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य, रामकृष्ण मिशन आश्रम, भोपाल

स्वामी शुद्धानन्द

उन दिनों बेलूड़ मठ में निवास करने वाले कनिष्ठ साधुओं की संख्या अधिक नहीं थी। अत: उनमें से अधिकांश साधु मठ के विभिन्न कार्यों में सहायता किया करते थे। एकदिन सुबह जब साधुगण रसोई-घर में सब्जी काटने में व्यस्त थे, स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज ने उनसे कहा, ''सब लोग एक-एक आलू छीलकर मेरे पास लेकर आओ। उन छीले हुए आलुओं को देखकर समझ में आएगा कि तुम लोगों में से कौन यथार्थ ध्यान करता है।''

साधुओं ने आलुओं को छीलकर एक थाल में रखा और स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज के पास लेकर आए। थाल को एक बार देखकर महाराज ने एक विशिष्ट आलू की ओर चिह्नित करते हुए कहा, ''जिसने इस आलू को छीला है, एकमात्र वही अच्छा ध्यान करता है।'' उस आलू को स्वामी शुद्धानन्दजी महाराज ने छीला था।

पवित्रता का अद्भुत स्पर्श

स्वामी विशुद्धानन्द

स्वामी विशुद्धानन्द महाराज (१८८३-१९६२) तब रामकृष्ण संघ के उप-संघाध्यक्ष थे। एक बार हिमालय स्थित किसी प्रदेश की महारानी उनका दर्शन करने के लिए बेलूड़ मठ आयीं। उन्होंने अपने राज्य तक में महाराज के पवित्र व्यक्तित्व के बारे में सुन रखा था। उन्होंने महाराज की व्यक्तिगत मुलाकात के लिए विनती की और उन्हें अनुमति दी गई। उन्होंने स्वामी विशुद्धानन्द महाराज के कमरे में प्रवेश किया और दरवाजे को बन्द कर प्रणाम करने के बाद बैठ गईं। वे एक शब्द भी नहीं बोलीं, केवल शान्ति से बैठकर चुपचाप कुछ समय के लिए रोती रहीं। तदनन्तर स्वयं को शान्त करती हुई वे बोलीं, ''महाराजजी, अब मेरा मन शान्त हो गया है। घर में ऐसा कोई स्थान नहीं हैं, जहाँ मैं अपने हृदय की दबी हुई व्यथा को व्यक्त कर सकूँ। आपकी उपस्थिति में मुझे शान्ति प्राप्त हुई है। आप मुझे आशीर्वाद दीजिए।''

वे बिना एक शब्द बोले स्वामी विशुद्धानन्द महाराज के सामने कुछ समय के लिए बैठी रहीं। तत्पश्चात महाराज को अतीव भक्तिभाव के साथ प्रणाम कर चुपचाप कमरे से बाहर चली गयीं।

स्वामी ओंकारानन्द जी के कुछ संस्मरण

बेलूड़ मठ में न्यासियों की प्रतिमाह की बैठक में उपस्थित होने के लिए एक संन्यासी आये थे। उनकी आयु लगभग ६५ से अधिक थी और वे संघ के काकुड़गाछी (कोलकता) आश्रम से आये थे। वे मठ के न्यासी और काकुड़गाछी आश्रम के अध्यक्ष थे। आश्रम में तब कार नहीं थी, इसलिए एक भक्त अपनी कार में महाराज को बेलूड़ मठ तक ले आये। बैठक के उपरान्त महाराज उसी भक्त की कार से वापस जाने वाले थे।

उस दिन मिहिर नामक एक युवा ब्रह्मचारी बेलूड़ मठ से शिलाँग आश्रम के लिए जा रहे थे। शिलाँग आश्रम बेलूड़ मठ से कई सौ मील दूर स्थित है । वहाँ जाने के लिए उन्हें सियालदह रेलवे स्टेशन से ट्रेन पकड़नी थी। सियालदह बेलूड़ मठ से लगभग सात किलोमीटर दूर तथा काकुड़गाछी जाने के मार्ग में अवस्थित है। महाराज को यह बात मालूम हुई और उन्होंने ब्रह्मचारी को अपने सामान के साथ कार में बैठने के लिए कहा। सियालदह रेलवे स्टेशन पर पहुँचने के उपरान्त, कार को गाड़ी-स्टैण्ड में रखकर गाड़ी की डिग्गी खोली गई । महाराज ने ब्रह्मचारी के सामान को निकालकर अपने कंधों पर रखा और रेलवे स्टेशन की ओर तीव्र गति से जाने लगे। स्वास्थ्य अच्छा होने के बावजूद ब्रह्मचारी मिहिर कुछ दुबले-पतले थे। लगता है, इसीलिए महाराज उनके भारी सामान को उन्हें नहीं ढोने देना चाहते थे। ब्र. मिहिर अत्यधिक लज्जा का अनुभव करने लगे। उन्होंने महाराज से प्रार्थना की, ''महाराज, कृपया सामान को मुझे दीजिए। मैं इसे ले जाऊँगा।'' लेकिन महाराज उनकी बात नहीं मान रहे थे। वे सामान को गाड़ी-स्टैण्ड से रेलवे स्टेशन के प्रस्थान विश्रामगृह तक ले आये। ये महाराज स्वामी ओंकारानन्द (१८९६-१९७३) थे। परवर्ती काल में वे रामकृष्ण संघ

के उप-संघाध्यक्ष हुए।

हमारे संघ में कनिष्ठ साधु अपने ज्येष्ठ साधुओं से इस प्रकार की सेवा ग्रहण करने के बारे में सोच भी नहीं सकते। इस कारण ब्रह्मचारी बहुत लज्जा का अनुभव करने लगे। यह घटना दर्शाती है कि स्वामी ओंकारानन्द महाराज में मिथ्या अहंकार बिल्कुल भी नहीं था। इसके अतिरिक्त यह घटना कनिष्ठ साधुओं के प्रति उनके प्रेममय सम्बन्ध को भी व्यक्त करती है।

स्वामी ओंकारानन्द विलक्षण दिव्य गुणों से सम्पन्न थे। एक आर्दश संन्यासी होने के साथ-साथ वे बहुत बड़े विद्वान भी थे। सनातन हिन्दू शास्त्रों के ऊपर उनका असाधारण अधिकार था। वाराणसी में रहते समय उन्होंने विद्वान पण्डितों से शास्त्रों का गहन अध्ययन किया था। उन्होंने पाश्चात्य दर्शन एवं अन्य धर्मों का भी भलीभाँति अध्ययन किया था। इतनी प्रखर विद्वत्ता के बावजूद भी उनकी पुस्तक लिखने में कभी रुचि नहीं थी। स्वामी ओंकारानन्द हमारे संघ के कर्मकाण्ड-अनुष्ठान में दक्ष साधुओं में से एक थे।

जब स्वामी शिवानन्द महाराज हमारे संघ के संघाध्यक्ष थे, तब एक घटना घटी। स्वामी शिवानन्द महाराज ब्रह्मज्ञ संन्यासी थे। यद्यपि वे अपनी उच्च आध्यात्मिक अवस्था को गुप्त रखने का प्रयत्न करते थे, तथापि कभी-कभी वह प्रकट हो जाती थी। एकबार एक ज्योतिषी उनका भविष्य देखने के लिए आए। उस समय कुछ अन्य साधु भी वहाँ उपस्थित थे। कुछ गणना करने के उपरान्त ज्योतिषी ने शिवानन्द महाराज से कहा, ''महाराज, आपको ब्रह्मज्ञान होगा।''

शिशुसुलभ सरलता के साथ शिवानन्द महाराज ने कहा, ''आप ऐसा क्यों कहते हैं कि ब्रह्मज्ञान होगा, बल्कि कहिए, ब्रह्मज्ञान हो गया है।''

यद्यपि शिवानन्दजी महाराज ब्रह्मज्ञानी थे, लेकिन वे शास्त्रों के पण्डित नहीं थे। एकबार एक पण्डित शिवानन्द महाराज से भेंट करने के लिए आये। उन्होंने महाराज से कहा, ''महाराज, मैं आपके साथ शास्त्र-चर्चा करना चाहता हूँ।''

उस समय एक युवा संन्यासी के रूप में स्वामी ओंकारानन्द वहाँ उपस्थित थे। वे पण्डित से बोले, ''यदि आप ब्रह्मज्ञान के विषय में जानना चाहते हैं, तो उनसे पूछिये। लेकिन यदि आप शास्त्र-चर्चा करना चाहते हैं, तो आप मेरे साथ कर सकते हैं।''

जैसा कि उपरोक्त कहा गया है कि स्वामी ओंकारानन्द जी महाराज का अपने कनिष्ठ साधुओं के प्रति बहुत प्रेम था। वे जैसे स्वयं स्वामी विवेकानन्द के जीवन और उपदेश से प्रेरित हुये थे, वैसे ही वे सोचते थे कि उनके कनिष्ठ साधु भी स्वामीजी से प्रेरित हों। वे कनिष्ठ साधुओं से अपेक्षा रखते थे कि वे शारीरिक और आध्यात्मिक रूप से बलवान हों और स्वयं को पूर्णतया आध्यात्मिक आदर्श के प्रति समर्पित करें। वे यह भी चाहते थे कि साधु-ब्रह्मचारी स्वामी विवेकानन्द के साहित्य के अलावा परम्परागत हिन्दू शास्त्रों का भी अध्ययन करें।

फ्रांस के रोमाँ रोलाँ ने भारत के नोबल पुरस्कार विजेता रवीन्द्रनाथ टैगोर से एकबार पूछा था, ''मैं भारत को कैसे समझूँ?'' टैगोर ने उत्तर दिया, ''आप विवेकानन्द का अध्ययन कीजिए। उनमें सभी कुछ सकारात्मक है, कुछ भी नकारात्मक नहीं।'' यह वाक्य स्वामी ओंकारानन्द महाराज पर भी प्रयुक्त किया जा सकता है। उनमें सभी कुछ सकारात्मक था, कुछ भी नकारात्मक नहीं। उनका तरुण मन सदैव नए सत्य एवं ज्ञान की नवीन विधाओं का अन्वेषण करने को उत्सुक था। उदाहरण के लिए, उन्हें सत्तर वर्ष की आयु में भारतीय शास्त्रीय संगीत सीखने की अभिरुचि हुई थी।

एक उल्लेखनीय गुण जो स्वामी ओंकारानन्द महाराज में था, वह था उनकी अपनी बाह्य छबि को बनाये रखने का सम्पूर्ण अभाव। एकबार एक प्रौढ़ सज्जन सिंगापुर से बेलूड़ मठ आये। वे सिंगापुर से इतनी दूर स्वामी ओंकारानन्द महाराज से भेंट करने के लिए आये थे। अनेक वर्षों पूर्व जब स्वामी ओंकारानन्द महाराज सिंगापुर गए थे, तब उक्त सज्जन की उनसे भेंट हुई थी। वे सज्जन बेलूड़ मठ के अतिथि-निवास में रह रहे थे। तत्कालीन संघ के महासचिव स्वामी गम्भीरानन्द महाराज ने मुझे उनके साथ स्वामी ओंकारानन्द महाराज से मिलने के लिए काकुड़गाछी आश्रम में जाने के लिए कहा। स्वामी ओंकारानन्दजी महाराज तब रामकृष्ण संघ के उप-संघाध्यक्ष थे।

बेलूड़ मठ में भोर में नाश्ता करने के बाद हम लोग कार से काकुड़गाछी आश्रम पहुँचे। स्वामी ओंकारानन्द महाराज मन्दिर में ध्यान करने के पश्चात अभी मन्दिर से बाहर आये ही थे। वे अपने कार्यालय के निकट वाले बरामदे में बैठे और उन्हें एक बहुत पुरानी छोटी मेज पर नाश्ता दिया गया। उनके नाश्ते में कुछ प्रसादी फल थे। महाराज के नाश्ते के समय हमें बरामदे में बैठने के लिए कहा गया।

शेष भाग पृष्ठ ३२९ पर

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (२३)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

एक किशोरी श्रीरामकृष्ण आश्रम में नियमित आती थी। रामकृष्ण मठ के संघाध्यक्ष महाराज भक्तों को मंत्र-दीक्षा देते थे। किशोरी भी मंत्र-दीक्षा लेना चाहती थी, परन्तु उसकी माँ विरोध कर रही थी। एक दिन वह अपनी माँ को आश्रम में लेकर आई। आश्रम के वरिष्ठ संन्यासी ने माँ के मन में उठी शंकाओं का समाधान किया, तो वह मंत्र-दीक्षा के लिये सहमत हो गई। एक वर्ष बाद वह माता स्वयं आश्रम में आकर पूछने लगी कि मुझे पता चला है कि 'प्रेसिडेन्ट महाराज' आए हैं, क्या इस बार भी मंत्र-दीक्षा देने वाले हैं?

''हाँ, पर आप क्यों पूछ रही हैं?'' संन्यासी ने पूछा। ''महाराज, इस बार तो मुझे स्वयं मंत्र-दीक्षा लेनी है। मेरी तीन और लड़कियाँ हैं, उन्हें भी मंत्र-दीक्षा मिले, ऐसा मैं चाहती हूँ।'' यह बात सुनकर संन्यासी को बहुत आश्चर्य हुआ, तब उसने कहा, ''स्वामीजी, पिछले वर्ष मेरी बड़ी बेटी ने यहाँ से मंत्र-दीक्षा ली थी। ऐसे तो, वह बड़ी भली है, पर उसके स्वभाव में एक ही दोष था, वह बार-बार गुस्सा हो जाती थी। आश्चर्य की बात यह है कि मंत्र-दीक्षा के बाद उसके स्वभाव में विलक्षण परिवर्तन आ गया। अब वह कभी क्रोध नहीं करती। मुझे भी क्रोध आता है। मैं अपने क्रोध पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए दीक्षा लेना चाहती हूँ। मेरी तीनों छोटी बेटियों को भी दीक्षा मिले और उनके स्वभाव में ऐसा विलक्षण परिवर्तन हो, यही मेरी इच्छा है।''

इस प्रकार से पवित्र मंत्र-जप से मन पर बहुत शान्तिदायी प्रभाव पड़ता है, मन का चिड़चिड़ापन दूर हो जाता है।

दूसरा उपाय है कि क्रोध क्यों आता है, इसका विश्लेषण व्यक्ति को स्वयं करना चाहिए। यदि पूरे महीने की घटनाओं की सूची बनाई जाए, तो पता चलेगा कि व्यक्ति को क्रोध इसलिये होता है कि कई बातें उसकी इच्छानुसार नहीं होती है। इसलिए व्यक्ति को अपने मन में यह भाव दृढ़ करना चाहिए कि जगत में प्रत्येक घटना अपनी इच्छानुसार नहीं होती और न हो सकती है, तो फिर आक्रोश कम हो जाता है।

इसके बाद पिछले महीने किये गये क्रोध के प्रसंगों की लाभ-हानि देखी जाय, तो पता चलेगा कि क्रोध से लाभ होने के बदले स्वयं की हानि अधिक हुई है। इसके बाद जब भी मन में क्रोध की लहर उठे, तब पिछली हानि को याद करने से क्रोध कम हो जाता है।

प्रतिदिन प्रात:काल व्यक्ति यदि अपने को पवित्र भाव और विचारों से भर दे, तो उसका चित्त स्वच्छ और शान्त रहेगा। यदि चित्त स्वच्छ और शान्त होगा, तो कोई भी बाह्य परिस्थिति उसे अशान्त और विक्षुब्ध नहीं कर सकती। इसके लिए सत्साहित्य का अध्ययन, ध्यान और प्रार्थना के द्वारा अपने मन को शान्त और पवित्र रखने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसे पवित्र मन में ऐसा प्रकाश होता है कि क्रोध का चांडाल उसकी छाया में आते ही अदृश्य हो जाता है।

परिवार में लड़ाई-झगड़े हों तब...

आधुनिक युग में परिवार टूट रहे हैं। संयुक्त परिवार प्रथा नष्ट हो रही है। छोटे परिवारों में भी माता-पिता और सन्तानों के बीच में मतभेद बढ़ते जा रहे हैं। पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी के बीच भी बिगड़े हुए सम्बन्ध देखने को मिलते हैं। जो घर पहले शान्ति का मंदिर माना जाता था, वह अब अशान्ति का सर्जक बन गया है। इसका उत्तरदायी है – सम्पत्ति, जमीन-जायदाद, स्वतंत्र रहने की वृत्ति, मीडिया द्वारा पाश्चात्य भोगवादिता का प्रभाव और नैतिक मूल्यों का ह्रास।

एक गृहस्थ भक्त ने अपने गुरु महाराज को एक दिन कहा, ''महाराज, जीवन से शान्ति चली गई है। रात को नींद भी नहीं आती है, कोई उपाय बताइये।''

''क्यों, क्या बात है?'' महाराज ने पूछा।

''महाराज, क्या कहें, हद हो गई है। छोटे भाई ने गाली-गलौच शुरू कर दी है। बापूजी ने यह सोचकर मकान ऊपर-नीचे बनाया था कि दोनों बेटे साथ रहेंगे। अब घर छोड़कर किराये के मकान में भी नहीं जा सकते। भाई तो ठीक, अब उसकी पत्नी और बच्चे भी नीचे से गाली देते हुए जाते हैं। ऊपर से कचरा और जूठन नीचे फेंकते हैं। सच में अब मैं त्रस्त हो गया हूँ, भाई अलग भी नहीं होता है। बस, एक ही बात लेकर बैठा है, 'आगे की सारी जमीन मुझे दे दो, तो हस्ताक्षर करूँगा।' आगे की जमीन एक हजार यार्ड की है। पीछे का पूरा मकान मैं लूँ, ऐसा बँटवारा हो, तो उसे स्वीकार है। लेकिन आगे की जमीन सड़क पर होने से उसकी कितनी अधिक कीमत है? पीछे के मकान की फिर कोई कीमत ही नहीं रहेगी। ऐसा अन्याय कैसे

चलेगा? मन होता है कि कोर्ट में बँटवारा करवा लूँ, तभी मानेगा।'' गुरुजी बोले, 'भाई, जमीन-जायदाद का झगड़ा तो महाभारत काल से चला आ रहा है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। लेकिन महाभारत का परिणाम क्या हुआ? कौरव क्या भोग सके? यदि तुम्हें शान्ति चाहिए, तो उसकी कीमत जमीन से चुकानी पड़ेगी। कोर्ट में जाओगे, तो कब निपटारा होगा? तब तक यही अशान्ति रहेगी। कभी फैसला आया, तो भी शान्ति मिलेगी क्या? कहावत है न – 'जर, जोरू और जमीन, झगड़े की जड़, ये तीन'। इसलिए प्रतिदिन खून जलाने से अच्छा है, आगे की जमीन के बदले मकान लेकर बँटवारा कर लो, तो तुम्हारे जीवन में सुख-शान्ति रहेगी।'' उस भक्त ने अपने गुरु की बात मानकर पीछे का मकान अपने हिस्से में ले लिया। भले ही जमीन के लाखों रुपये नहीं मिले, परन्तु वह सुख-शान्ति से तो रह सका। इस प्रकार परिवार में जमीन-जायदाद, सम्पत्ति के कारण बहुत लड़ाई-झगड़े होते हैं। उस समय बड़े लोगों की सलाह लेकर थोड़ा त्याग करके भी अपना भाग स्वीकार कर लेना चाहिए, नहीं तो कोर्ट में पैसे बर्बाद हो जाते हैं और कई बार तो फैसला इतना विलम्ब से होता है कि बँटवारा करने वाली पीढ़ी ही गुजर जाती है।

आधुनिक युग में परिवार की गृहिणी को बहुत काम रहता है, इसलिए वह तनावग्रस्त रहती है। उसमें भी यदि वह नौकरी करती हो, तो सबेरे एक साथ कई काम तेजी से करने में घर का वातावरण अशान्त हो जाता है। एक सत्संगी महिला से कथावाचक महात्मा ने पूछा, ''सेवा-पूजा ठीक चल रही है न माँ ?'' ''क्या कहूँ महाराज, सबेरे प्रतिदिन दो घंटे लालाजी की सेवा-पूजा, भक्ति करती हूँ, परन्तु घर में ऐसी धमाचौकड़ी होती है कि सेवा-पूजा में मन बराबर लगता नहीं है। बहू के दो बच्चों को सबेरे तैयार करके विद्यालय भेजना होता है, मेरा बेटा आठ बजे टिफिन लेकर जाता है, उसकी तैयारी करना, बस चीख-पुकार मच जाती है। यदि कोई उससे उलझ गया, तो बस उसकी बन आयी। मैं तो लालाजी की सेवा में बैठ जाती हूँ, लेकिन इस शोरगुल में मेरा मन नहीं लगता है।''

''माँ सब जागें, उससे पहले सेवा-पूजा कर लो और फिर बहू को मदद करो। तुम्हारे पौत्र तो जीते-जागते गोपाल हैं, उनकी सेवा करो, उन्हें तैयार करने में मदद करो। इससे तुमको आनन्द मिलेगा। बहू की हड़बड़ी कम होगी, फिर जब समय मिले, तब अपने लालाजी की सेवा करो। जीवन्त गोपाल को भूलकर तुम विग्रह की सेवा करती हो, इसलिए अशान्ति है। इस प्रकार करके देखो, तुम सबको शान्ति और आनन्द मिलेगा।'' महात्मा ने उन्हें रास्ता बताया। पर यह सच है कि अधिकांश परिवारों में घर की गृहिणी के ऊपर काम का बोझ होने से उसका मन हमेशा व्यग्र रहता है और उसका प्रभाव समग्र परिवार पर पड़ता है। घर के सदस्यों को एक-दूसरे के अंदर स्थित दिव्यता की अनुभूति करके, उनमें स्थित भगवान की सहायता करनी चाहिए। माता-पिता बालकों में बाल-गोपाल को देखें। बालक माता-पिता को देव समान मानकर उनकी आज्ञा का पालन करें, तो परिवार में लड़ाई झगड़े नहीं होंगे। अपनी संतानों के पालन-पोषण के लिये माता-पिता ने नि:स्वार्थ भाव से जो त्याग किया है, उसका प्रभाव उनके बालकों के चित्त में जाने-अनजाने पड़ता ही है। जो माता-पिता बालकों के हित में ही अपना हित देखते हैं, उनके बालक कभी उद्धत या उच्छृंखल नहीं होते हैं। जो माता-पिता बालकों की उपेक्षा करते हैं या अपने स्वार्थ के लिये उनका पालन-पोषण करते हैं, तो वे बच्चे बड़े होकर अपने माता-पिता का सम्मान नहीं करते। माता-पिता के हृदय की प्रतिध्वनि उनकी संतानों पर हमेशा पड़ती है। अमेरिका गये हुए एक दम्पती वहाँ से आकर एक बहन के घर गये। साधारण स्थिति के उन पति-पत्नी को उन्होंने कहा, ''तुम धन्य हो, तुम्हारे बेटे ने यह लिफाफा मुझे दिया है और कहा, 'मेरी माँ के चरणों में ये रूपए रख देना। यह मेरी पहली कमाई है। मेरी माँ ने मेरे लिये कितना कुछ सहन किया है। मेरे माता-पिता को कहना कि अब तुम्हारे दु:ख के दिन चले गये।' बहन ! तुम्हारी बातें करते करते बेटे की आँखों में आँसू आ गये। तुम्हारे प्रति कितनी भक्ति है। मुझे लगा कि काश ! मेरा बेटा भी ऐसा होता!'' परन्तु ऐसी सन्तानों के लिये माता-पिता का तप, त्यागपूर्ण जीवन और बालकों के प्रति सच्चा प्रेम आवश्यक है। **(क्रमशः)**

सभी को एक ही समान प्रेम कैसे करना, मैं तुम्हें बताती हूँ। जिन्हें तुम प्रेम करते हो, उनसे कुछ माँगना नहीं। यदि तुम कुछ माँगते हो, तो कोई तुम्हें अधिक देगा और कोई कम। उस अवस्था में जो तुम्हें अधिक देता है, उसे तुम अधिक प्रेम करोगे और जो कम देता है, उससे कम प्रेम करोगे। इस प्रकार सभी के प्रति तुम्हारा प्रेम समान नहीं रहेगा। तुम सभी को निष्पक्ष प्रेम नहीं कर सकोगे।

– श्रीमाँ सारदा देवी

स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (५)

प्रव्राजिका व्रजप्राणा

(स्वामी विवेकानन्द की ग्रन्थावली का अधिकांश भाग गुडविन द्वारा लिपिबद्ध व्याख्यान-मालाएँ हैं। उनकी आकस्मिक मृत्यु पर स्वामीजी ने कहा था, ''गुडविन का ऋण मैं कभी चुका नहीं सकूँगा।... उसकी मृत्यु से मैं एक सच्चा मित्र, एक भक्तिमान शिष्य तथा एक अथक कर्मी खो बैठा हूँ। जगत् में ऐसे अति अल्प लोग ही जन्म लेते हैं, जो परोपकार के लिये जीते हैं। इस मृत्यु ने जगत् के ऐसे अल्पसंख्यक लोगों की संख्या एक और कम कर दी है।'' गुडविन के संक्षिप्त जीवन का अनुवाद पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

स्वामीजी की राजयोग पुस्तक के प्रकाशन को लेकर एक विवाद खड़ा हुआ। स्वामीजी ने इंग्लैण्ड के ई. टी. स्टर्डी को अपनी न्यूयॉर्क कक्षाओं की प्रतिलिपियाँ और न्यूयॉर्क वेदान्त सोसायटी द्वारा प्रकाशित अपनी कुछ नई पुस्तिकाएँ भेजी थीं। स्वामीजी की इच्छा थी कि इन पुस्तिकाओं की इंग्लैण्ड में विक्री की जाएगी और साथ ही उनके द्वारा भेजी गई न्यूयॉर्क कक्षाओं की प्रतिलिपियों से स्टर्डी को इंग्लैण्ड में वेदान्त की कक्षाएँ लेने में सहायता मिलेगी। किन्तु स्टर्डी ने उन पत्रिकाओं को इंग्लैण्ड में प्रकाशित कर न्यूयॉर्क वेदान्त सोसायटी को चिन्ता में डाल दिया। इसके अलावा स्टर्डी ने राजयोग नामक पुस्तिका को प्रकाशित किया, जिसमें स्वामीजी की न्यूयॉर्क में प्रदत्त राजयोग की कक्षाओं का संकलन था। यह पुस्तक न्यूयॉर्क संस्करण से बहुत भिन्न थी, जिसके प्रकाशन की तैयारी न्यूयॉर्क वेदान्त सोयायटी कर रही थी। न्यूयॉर्क वाले संस्करण में स्वामीजी द्वारा अनूदित पातंजल योगसूत्र का भी संकलन था। स्वामीजी ने तुरन्त स्टर्डी को लिखकर कहा कि इस स्थिति ने '...मुझे बहुत त्रस्त कर दिया है। ये प्रवचन कुछ मित्रों के तत्त्वावधान में हुए थे। उन्होंने इसके आशुलिपि और अन्य खर्चों का व्ययभार इसी शर्त पर वहन किया था कि प्रकाशन का अधिकार केवल उनके पास ही सुरक्षित रहेगा।''

विशेषकर, स्टर्डी के इन कार्यों से कुमारी वाल्डो चिंतित हो गईं, क्योंकि उन्होंने बड़े परिश्रम से पातंजल योगसूत्र को स्वामीजी द्वारा सुनकर लिपिबद्ध किया था। इसके प्रकाशन के लिए उन्होंने अपना बहुत समय दिया था और कड़ी मेहनत की थी। दूसरी ओर, श्रीमती ओली बुल न्यूयॉर्क वेदान्त सोयायटी की प्रकाशन समिति की प्रभारी थीं। गुडविन और श्रीमती ओली बुल स्टर्डी के कार्य से बहुत प्रभावित हुए, क्योंकि उन्होंने स्वामीजी की पुस्तकों के लिए प्रसिद्ध प्रकाशक खोज निकाला था। अमेरिकी शिष्यों को इस कार्य में उतनी सफलता नहीं मिली थी। श्रीमती बुल और गुडविन का मत था कि पुस्तक-प्रकाशन के लिए स्टर्डी जो प्रयत्न कर रहे हैं, उसमें बाधा न पहुँचायी जाए। गुडविन की योजना थी कि स्वामीजी उन्हें यह टेलिग्राम करें : *राजयोग छोड़कर बाकी सब लेखों का उपयोग कर सकते हो – विवेकानन्द*। इस विषय में गुडविन ने श्रीमती बुल को लिखा था, ''मैंने स्वामीजी को स्टर्डी को टेलिग्राम करने के लिए सुझाव दिया...किन्तु उन्होंने इसे ठीक नहीं समझा। मुझे लगता है कि यह काम उन्हें न बताकर कर लेना चाहिए। यह काम मैं अपनी जिम्मेदारी पर कर सकता था, पर मुझे लगा कि आपसे एकबार पूछ लूँ।''

आश्चर्य की बात कि गुडविन और श्रीमती बुल ने ठीक वैसा ही किया और उनका निर्णय उचित ही था। उल्लेखनीय है कि श्रीमती बुल की स्वीकृति मिलने के बाद ही गुडविन अपनी योजना के अनुरूप कार्य करने के लिए आश्वस्त हुए। यह तो मानना पड़ेगा कि स्वामीजी से जुड़े घनिष्ठतम व्यक्ति ही इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक उनकी अवज्ञा कर सकते हैं।

लॉन्गमैन की प्रसिद्ध पब्लिशिंग कम्पनी से अनुबन्ध कराने में स्टर्डी सफल हुऐ। ऐसा निश्चित किया गया कि राजयोग पुस्तक इंग्लैण्ड से ही स्वत्वाधिकार सहित प्रकाशित की जाएगी और अमेरिका में केवल उसका विक्रय-वितरण किया जाएगा।

स्टर्डी के प्रकाशन कार्य में गुडविन और श्रीमती बुल के समर्थन से कुमारी वाल्डो को आघात लगा। गुडविन को लगा कि कुमारी वाल्डो संकुचित मनोवृत्ति वाली हैं, क्योंकि उनका दृष्टिकोण वैश्विक न होकर केवल प्रांतीय न्यूयॉर्क तक ही सीमित है। इसके अलावा कुमारी वाल्डो गुडविन को श्रीमती बुल के हाथ का एक खिलौना मात्र समझती थीं। इन सब विवादों के प्रति गुडविन ने अपने दृष्टिकोण के बारे में श्रीमती बुल को लिखा था, ''मैं कोई आदर्श वेदान्ती होने का दावा नहीं करता और मुझे लगता है कि मैं वैसा हूँ भी नहीं। कलह-विवाद किसी भी कार्यक्षेत्र के अपरिहार्य अंग होते हैं और मेरे मन में प्राय: यह प्रबल विचार आता है कि कोई व्यक्ति अपनी रुचि अथवा त्याग की भावना से, स्वेच्छा और प्रसन्नतापूर्वक इस कार्य का वहन करे... व्यापारिक लेन-देन का जिसमें अंश मात्र भी नहीं है, ऐसा वेदान्त सर्वसामान्य के लिए न होकर कुछ ही लोगों के लिए

जीवन्त हो सकता है, उसमें भी जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, यदि कोई यह कार्य नहीं करता है, तो जब तक मैं सक्षम हूँ, मैं यह कार्य स्वेच्छा और रुचिपूर्वक करूँगा। किन्तु मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मैं इसके बिना भी रह सकूँगा।''

यह पत्र गुडविन के व्यक्तित्व के विशेष गुण यथा – दृढ़ता, बल और उच्चतर आदर्श हेतु अप्रिय परिस्थितियों को सँभालने की उनकी तत्परता को प्रकट करते हैं।

गुडविन ने स्वामीजी की आज्ञा का सहज उल्लंघन किया, इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उनकी स्वामीजी के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा नहीं थी। स्वामीजी के प्रति उनकी भक्ति सचमुच अद्वितीय थी। गुडविन स्वामीजी के मानवीय और दैवी दोनों स्वभाव से अवगत थे और उनके इस मानवीय अंश से ही गुडविन प्राय: वितर्क करते थे।

स्वामीजी की मुक्तहस्त उदारता गुडविन के लिए एक चिन्ताजनक विषय था। स्वामीजी जिसे भी अभावग्रस्त समझते, उसे बिना विचारे बड़ी धनराशि दे देते। श्रीमती बुल से इसकी शिकायत करते हुए गुडविन ने लिखा था, ''बोस्टन में उन्होंने बिना सोचे-समझे एक बड़ी धनराशि, लगभग ३०० डॉलर दे दी और मैंने तय कर लिया है कि उनका यह बिना सोचे-समझे दान मैं बन्द करा दूँगा...।'' गुडविन इस विषय में कितने भी दृढ़ रहे हों, किन्तु उनकी सभी युक्तियाँ विफल रहीं। स्वामीजी अनन्य उदारतापूर्वक बिना किसी अपेक्षा और हिसाब के दान देते रहे। वैसे देखा जाए, तो गुडविन की चिन्ता स्वाभाविक थी, क्योंकि १८९० में अनेक लोगों की ३०० डॉलर वार्षिक आय होती थी। किन्तु यह केवल एक ही उदाहरण है स्वामीजी की दैनन्दिन जीवन से सम्बन्धित व्यावहारिक समस्याओं का।

एक और उदाहरण : ऐसा निश्चित किया गया था कि गुडविन बोस्टन से निकलकर १० अप्रैल को न्यूयॉर्क पहुँचेंगे और वहाँ स्वामीजी से मिलेंगे। गुडविन न्युयॉर्क पहुँचे और उन्हें पता लगा कि स्वामीजी अभी तक शिकागो में ही हैं। स्वामीजी की न्यूयॉर्क में अनेक सभाएँ पूर्वनिर्धारित थीं। गुडविन ने अप्रसन्न होकर स्वामीजी के शिकागो के यजमान को टेलिग्राम किया : *स्वामीजी को आज ही यहाँ आने के लिए कहें – कार्यक्रम पूर्वनिर्धारित हैं।* इस बारे में गुडविन श्रीमती बुल को लिखते हैं, ''मुझे लगता है, मैंने ठीक ही किया। निस्सन्देह स्वामीजी अपनी इच्छा से ही वहाँ रह रहे हैं, पर मुझे लगता है कि वे भी सामान्य कर्तव्यों की उपेक्षा न करें।''

गुडविन ने स्वामीजी के साधारण कर्तव्यों के पालन की बात भले ही कही हो, किन्तु वे स्वामीजी के असाधारण व्यक्तित्व से भलीभाँति परिचित थे। गुडविन के लिए स्वामीजी ईश्वरीय अवतार से कम नहीं थे। गुडविन ने ७ अक्तूबर, १८९६ के पत्र में जोसेफीन मेक्लाउड को लिखा था, ''तुम यह सुनकर कहीं चकित तो नहीं होगी कि स्वामीजी मेरे लिए ईसामसीह के समान हैं? मुझे लगता है कि तुम्हें आश्चर्य नहीं होगा, पर मैं क्या कहना चाहता हूँ, तुम समझ जाओगी।''

१५ अप्रैल, १८९६ को स्वामीजी और गुडविन समुद्री जहाज से इंग्लैण्ड के लिए रवाना हुए। आयर्लैण्ड की यात्रा करने के लिए वे वहाँ के दक्षिण तटीय क्वीन्सटाउन में एस. एस. जर्मेनिक जहाज से उतर गए और बाद में उत्तर बंदरगाह पर जाकर जहाज पकड़ा। इसके बाद स्वामीजी और गुडविन लिवरपुल में जहाज से उतर गए और इंग्लैण्ड के सुन्दर और पुराने गाँवों से जाने वाली ट्रेन में बैठे। यहाँ पर वे अलग हो गए। गुडविन अपनी विधवा माता से मिलने बाथईस्टन की ट्रेन में रवाना हुए और स्वामीजी ई. टी. स्टर्डी के घर जाने के लिए कैवरशेम रवाना हुए। वहाँ स्वामी सारदानन्द जी बड़ी आतुरता से स्वामीजी की प्रतीक्षा कर रहे थे। स्वामी सारदानन्द जी अप्रैल से इंग्लैण्ड में ही थे। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ३२५ का शेष भाग

जैसे ही उन्होंने नाश्ता समाप्त किया, उन्होंने अपनी कृत्रिम दंतावली निकालकर सामने की थाली में रख दी। उन्होंने थोड़ी भी परवाह नहीं कि एक विश्वव्यापी धार्मिक संघ के उप-संघाध्यक्ष से मिलने आए हुए अतिथि उनके इस व्यवहार को कहीं अनुचित तो नहीं मानेंगे। स्वामी ओंकारानन्द जी ने उत्साह के साथ आध्यात्मिक चर्चा शुरू की। वे सज्जन वहाँ बैठकर ध्यानपूर्वक महाराज के प्रत्येक शब्द को सुनते रहे। उनकी आँखें महाराज की स्तुति के लिए झलक उठी थीं। यह भेंट लगभग एक घण्टे तक चली। बेलूड़ मठ में वापसी के समय उन सज्जन ने अपना मनोभाव व्यक्त किया, ''मुझे इसमें कोई संदेह नहीं हैं कि स्वामी ओंकारानन्द महाराज एक सच्चे सन्त हैं। अपनी बाह्य छबि अथवा लोग क्या सोचेंगे, इस ओर उनका किंचित भी ध्यान नहीं है। वे एक वेदान्त केसरी हैं, जो भयमुक्त होकर संसार-अरण्य में विचरण कर रहे हैं!'' उन सज्जन की स्वामी ओंकारानन्द महाराज के प्रति महान श्रद्धा से मैं अभिभूत हो गया था। **(क्रमशः)**

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (१९)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

(निवेदिता के पत्रांश)

९ अप्रैल, मिस मैक्लाउड को

मैं ... मठ में गयी थी। स्वामीजी बड़े दुर्बल तथा बीमार दिख रहे थे और उनकी आँखें सूजी हुई थीं। अहा! प्रिय स्वामीजी! वे बोले कि थोड़ी-सी दुश्चिन्ता के कारण वे थक गये हैं। उन्होंने अभी पढ़ाना शुरू ही किया था कि मेरे आने का संवाद पाकर वे उठकर चले आये। अत: सचमुच ही मैं अपने जाने के कारण प्रसन्न ही हुई।

परन्तु कल उनका दुर्बल शरीर देखकर मेरा कलेजा मुख को आ गया। योगानन्द की मृत्यु के बाद से मैं समझ गयी हूँ – प्रिय युम (जोसेफीन मेक्लाउड), वीर होना बड़ा अच्छा है, परन्तु वीर होने की चिन्ता मुझे भीरुता से और भी अधिक भीरुता की ओर ले जा रही है। उसी सम्भावना के कण मात्र स्पर्श से मैं मानो थरथरा गयी हूँ। यह मानो ईश्वर के विनाश के समान होगा। परन्तु उनके लिये यह परम शान्ति होगी!

[कलकत्ते में रहनेवाले कुछ अंग्रेजों के साथ निवेदिता की घनिष्ठता हो गयी थी। इस विषय में लिखने के बाद –]

... इस विषय में मुझे अपनी प्रचलित जीवनरीति के विषय में अपनी क्षुद्र धारणाओं को थोड़ा ढीला करना पड़ रहा है, क्योंकि लगता है कि उन लोगों के बीच मुझे कुछ वास्तविक कार्य करना है। कल अचानक ही मेरे मन में आया कि स्वामीजी ने मुझे इसीलिये ब्रह्मचारिणी बनाया, संन्यासिनी नहीं; भले ही उन्होंने इस विषय में सचेतन रूप से सोचा हो या नहीं।

बुधवार की संध्या। वास्तविकता यह है कि उनका (स्वामीजी) स्वास्थ्य सचमुच ही ठीक नहीं था। मैंने देखा कि वे कष्ट के कारण बारम्बार अपने सीने पर हाथ रख रहे थे और मुझे ऐसा लगा कि वे कल के अवसाद से ऊपर नहीं उठ सके हैं। मैं चाय की ट्रे सजाकर नीचे चली गयी। वहाँ श्रीरामकृष्ण के एक तरुण शिष्य के साथ बातें करने लगी। वे अद्भुत व्यक्ति हैं। वे गम्भीर होकर बोले, ''भगिनी, मैं देख रहा हूँ कि कम-से-कम हमारे देश के महापुरुष कभी दीर्घजीवी नहीं होते।'' ... युम, सच तो यह है कि मैं भयभीत हो गयी हूँ। मेरी पुरानी आशंका थी कि वे अब पाश्चात्य देशों में नहीं जा सकेंगे और मद्रास की वह 'तीन वर्षों के भीतर' वाली भविष्यवाणी भी मुझे परेशान करती रहती है। युम, युम, प्रिय युम, यदि तुम यहाँ रहती! मैंने इस व्यक्ति से प्रतिज्ञा करा ली है कि यदि कुछ घटित हो, तो मुझे समय रहते सूचित किया जाय। अन्य लोगों से भी यही बात कह जाऊँगी – चाहे दिन हो या रात, मुझे समाचार अवश्य दिया जाय।

परन्तु वस्तुत: भय का कोई कारण नहीं है। यह अज्ञात भय का आक्रमण मात्र है। सभी लोग कह रहे हैं कि योगानन्द की मृत्यु से वे बुहत व्यथित हैं और इसीलिये मुझे भय हो रहा है। वैसे यदि कुछ हुआ, तो मैं निश्चय ही तुम्हें टेलिग्राम भेजूँगी, बशर्ते कि तुम मुझे इसके लिये मना न करो। अत: इस पत्र के पहले कोई टेलिग्राम न पहुँचे, तो समझना कि मैं एक निरर्थक ही रोनेवाली बालिका हूँ। परन्तु युम, यह कितना निकट प्रतीत होता है! कोई भी दार्शनिक तत्त्व मेरी सहायता नहीं कर पा रहा है। मैं तो केवल इतनी प्रार्थना ही कर सकती हूँ – ''यदि सचमुच ही उनकी महासमाधि आसन्न हो, तो उनके जाने के पहले उन्हें थोड़ी शान्ति तथा विश्राम देना और उन्हें दी जानेवाली पीड़ा को मुझे दे देना।'' सम्भव है कि यह बात बचपना प्रतीत हो, परन्तु यदि ईश्वर ने सचमुच ही स्वामीजी को अन्तिम क्षणों में अधिक कष्ट दिया, तो ऐसे भगवान को न मैं जानना चाहती हूँ और न उनसे प्रेम ही करना चाहती हूँ, केवल इस मधुर व्यक्ति पर अन्याय करने के कारण, ऐसे सगुण-भगवान के लिये मेरे द्वार अनन्त काल के लिये बन्द हो जायेंगे। हाँ, उनके अन्य पक्षों के अतिरिक्त उनके व्यक्ति-रूप के लिये भी मैं जीऊँगी, कार्य करती रहूँगी और अथक रूप से कार्य करती रहूँगी। परन्तु ईश्वर – नहीं, नहीं, ऐसा कार्य वे नहीं करेंगे, कर नहीं सकेंगे – इससे बढ़कर दुष्टतापूर्ण

निष्ठुरता दूसरी नहीं हो सकती। ...

परन्तु मैं तुम्हें भी पीड़ा दे रही हूँ और स्वयं भी पा रही हूँ। पता नहीं, ये सब बातें तुम्हें लिखना उचित है या नहीं। परन्तु मैं तुमसे कुछ भी छिपाना नहीं चाहती। तुम अवश्य ही समझ लोगी कि मेरी यह उद्विग्नता अकारण है; और सर्वोपरि टेलिग्राम न मिलने पर समझ लेना कि वे महीने भर से ठीक ही हैं। तुम मुझे शक्ति तथा सांत्वना से परिपूर्ण एक दिव्य पत्र लिखना, क्योंकि योगानन्द की मृत्यु के बाद से मैं स्वयं को इस अन्तिम चरम आघात के अति निकट पाती हूँ – और मैं इससे ऊपर नहीं उठ पाती। ईश्वर करें कि कल मैं इसे निर्विघ्न डाक में डाल सकूँ और मुझे विश्वास है कि तुम भी इस पत्र को अधिक गम्भीरता से नहीं लोगी। मुझसे केवल इतना मत कहना कि मुझे तत्काल स्थान-परिवर्तन की आवश्यकता है, क्योंकि जब तक वे जीवित और यहीं हैं, तब तक मैं उनके सान्निध्य की परिधि के बाहर नहीं जा सकूँगी – नहीं, नहीं, ऐसा असम्भव है। वे पूज्य, प्रिय और देवता हैं – वे मुझे बुलायें और मैं यहाँ उपस्थित न मिलूँ – ऐसी बात मैं सोच भी नहीं सकती। मैं यह सोचकर भी स्तम्भित रह जाती हूँ कि इस पूरे वर्ष कैसे प्रति मिनट मेरा उनके प्रति पूज्य भाव बढ़ता गया है।...

बृहस्पतिवार का प्रात:काल। सदानन्द आये हैं और मेरे साथ बातें कर रहे हैं। स्वामीजी ने कहा है कि यह कुछ भी नहीं है। परन्तु मेरे ही समान वे भी सोचते हैं कि स्वामीजी अब अपनी गुफा छोड़कर कभी बाहर नहीं निकलेंगे। स्वामीजी ने सबसे कहा है कि उनकी मृत्यु चाहे जहाँ भी हो, उनका शरीर यहीं लाया जाय। उन्होंने और भी कहा, श्रीरामकृष्ण कह गये हैं कि गिरीश घोष को मिलाकर कुछ लोग एक माला के समान हैं; और उनमें से एक के चले जाने पर बाकी लोग भी शीघ्र ही प्रस्थान करेंगे। सदानन्द कहते हैं कि प्रतिदिन सभी लोग ये ही सब बातें कह रहे हैं। योगानन्द ही उनमें से पहले थे। ...

ऐसा सोचो, मानो कुछ हुआ ही न हो, परन्तु मुझे तो ऐसा बोध हो रहा है कि अब अन्त सीधे ही हम लोगों की ओर ताक रहा है। ...

सभी लोग मानो प्रतीक्षा कर रहे हैं – वे कहेंगे, ''मुझे मेरा आम मिल गया है'' – और तब सभी लोग समझ जायेंगे। इसके पीछे एक घटना है – श्रीरामकृष्ण ने अपनी मृत्यु-शय्या पर उनसे अकेले में कहा था, ''अरे, यह तेरा आम है, मैंने तेरे लिये रख दिया है।'' इस उक्ति के साथ ही सभी उनकी पहली भेंट के समय अपराह्न में श्रीरामकृष्ण की भविष्यवाणी को जोड़कर देख रहे हैं; उन्होंने कहा था, ''वह जब जान लेगा कि वह कौन है, तभी शरीर छोड़कर चला जायेगा।'' सदानन्द बोले, पहले जब कभी स्वामीजी बीमार पड़े थे, तब गुरुभाई लोग कहा करते थे, ''लेकिन यह मरेगा कैसे, हमारा कार्य तो अभी पूरा ही नहीं हुआ।'' यह विश्वास अब इतना पक्का नहीं रह गया है।

उन लोगों से कहकर मैंने उनकी कुण्डली दिखवा ली है। उनका कहना है कि अगले ९ वर्षों तक स्वामीजी के लिये भय की कोई बात नहीं, परन्तु वे बीमार रहेंगे। चाहे जैसे भी हो, वे जीवित रहें – यही मेरी स्वार्थपूर्ण कामना है। जिस धरती पर वे चलते हैं, वह धन्य है!

२५ अप्रैल, मिस मैक्लाउड को

पिछले कुछ दिनों के ही समान स्वामीजी स्वस्थ नहीं थे। उनका कहना है कि यह दमे के कारण है, क्योंकि हवा में नमी बढ़ जाने से ही बीमारी भयंकर हो उठती है। इसका तात्पर्य यह है कि बरसात के समय उन्हें यहाँ न रहकर उत्तर या पश्चिम भारत की ओर चले जाना चाहिये। गोलाप-माँ ने जब पूछा कि व्याख्यान देना उचित हुआ है या नहीं, तो वे बोले, ''हम लोग सैनिक हैं, हमें इसकी क्या परवाह?'' परन्तु वे मुझे बता रहे थे कि उनका कार्य पूरा हो चुका है। संन्यासी के विषय में मनु की महान् उक्ति को उद्धृत करते हुए वे बोले, ''संन्यासी न मृत्यु की कामना करे और न जीवित रहने की।''

१ मई, मिस मैक्लाउड को

मैंने उनसे पूछा कि संन्यासिनी बनने के लिये मुझे किस प्रकार की योग्यता विकसित करने की जरूरत होगी। वे तत्काल बोले, ''तुम जैसी हो, वैसी ही रहो।'' और इस प्रकार उन्होंने सदा के लिये मेरे संकल्प को सुनिश्चित कर दिया। तो भी मैंने बड़ी सावधानी के साथ जानने का प्रयास किया कि मेरा भ्रमण करना तथा विभिन्न लोगों से मिलना क्या उनकी दृष्टि में दोष प्रतीत होते हैं, क्योंकि मुझे स्वयं भी यह सब अनुचित लगने लगा था। उन्होंने कहा – नहीं। इसलिए उस दिन शाम को मैंने बोस दम्पती को सूचित किया कि वे जब तक चाहेंगे, मैं हर शुक्रवार को आती रहूँगी। **(क्रमश:)**

भारतगतप्राणा निवेदिता

सम्पादक एवं प्रकाशक – डॉ. ओमप्रकाश वर्मा
सचिव, विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर (छ.ग.)
पृष्ठ :२३२, मूल्य : १७५/-
मोबाईल नं.- ०९८२६३ ३१८१५

विवेकानन्द शिष्या सा तपस्विनी निवेदिता।
या भारतगतप्राणा लोकमाता महोदया।।

'भारतगतप्राणा निवेदिता' से आशय है कि ऐसी निवेदिता जिनके प्राण भारत में बसते हैं, भारत की सेवा में प्राणाहुति देने वाली निवेदिता, भारत का प्राण निवेदिता, भारत के प्राण को जीवन्त कर देने वाली निवेदिता, भारत की प्राण – नारीशक्ति के सेवार्थ जीवन का समर्पण करने वाली निवेदिता, भारतगत प्राणतत्त्व संस्कृति को विश्व पटल पर परिचित करानेवाली निवेदिता, भारतीय आभा को अपने प्राणों से दीप्त करनेवाली निवेदिता, इत्यादि अनेक गूढ़ भावों को उद्भासित करने वाला शीषर्क पुस्तक के समग्र चिन्तन को प्रस्तुत कर रहा है।

यह ग्रन्थ दो भागों में विभाजित है। प्रथम भाग, जीवन-दर्शन में विश्वविश्रुत रवीन्द्रनाथ टैगोर के 'लोकमाता निवेदिता', डॉ. राजलक्ष्मी वर्मा के 'निवेदिता के रचनाकार स्वामी विवेकानन्द', स्वामी यतीश्वरानन्द के 'भगिनी निवेदिता', दिनेशचन्द्र सेन के 'निवेदिता की भारत भक्ति तथा नि:स्वार्थता', स्वामी प्रपत्यानन्द के 'भारतीय प्राण वाणी की झंकृति : तपस्विनी निवेदिता', डॉ. सुरुचि पाण्डे के 'भारतीय कला और राष्ट्रविचार : भगिनी निवेदिता का चिन्तन', स्वामी मेधजानन्द के 'श्रीमाँ सारदा देवी और निवेदिता', प्रो. सुचित्रा मित्र के 'भगिनी निवेदिता की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ', स्वामी तन्निष्ठानन्द के 'भगिनी निवेदिता की जीवनियों का इतिहास', डॉ. आशा जैन के 'भगिनी निवदिता का जीवन सन्देश', माया राव के 'भगिनी निवेदिता एक तेजस्विनी समर्पिता', डॉ. ओम प्रकाश वर्मा के 'भगिनी निवेदिता का भारत प्रेम', ये लेख भगिनी निवेदिता के जीवन-दर्शन को सरलतम रीति से परिभाषित करते हैं। ग्रन्थ के द्वितीय भाग में निवेदिता द्वारा लिखित, 'गुरुदेव और उनका सन्देश', 'स्वामी विवेकानन्द के जीवन और कार्य का राष्ट्रीय महत्त्व', 'शिव और बुद्ध' लेख उनके चिन्तन की पराकाष्ठा को प्रमाणित करते हैं।

'लोकमाता निवेदिता' लेख में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने निवेदिता को मातृशक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। निवेदिता ने भारतीय नारी को सबल, सुदृढ़, संस्कारित, संगठित, सुशिक्षित, संवर्धित, सशक्त, सक्षम, सुयोग्य करने के लिए अनेकानेक प्रयास किए। फलस्वरूप लोकमातृत्व भाव से पूरित उनका हृदय भारतोत्थान के लिए सदा समर्पित रहा है। वे शिक्षा के वास्तविक स्वरूप से टैगोर को परिचित कराते हुए कहती हैं, "राष्ट्रगत निपुणता और व्यक्तिगत विशेषता के रूप में मनुष्य के अन्दर जो क्षमता विद्यमान है, उसे जागृत कर डालने को मैं सच्ची शिक्षा मानती हूँ।" जिस प्रकार एक माता अपने अपत्य के लिए अपना सर्वस्व समर्पण कर देती है, उसी प्रकार उन्होंने भारतवासियों के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। वे जन्म से हिन्दू नहीं थीं, परन्तु हिन्दुत्व उनकी आत्मा में निवास करता था, वे मन, विचार कर्म आदि से पूर्ण हिन्दू थीं। उन्होंने आन्तरिक प्रेम, पूर्ण श्रद्धा आदि के द्वारा भारतीय जन-मानस को मोह लिया था।

इन विभूति को गढ़ने वाले स्वामी विवेकानन्द थे, जिन्होंने पाश्चात्य संस्कृति में पली-बढ़ी मार्गरेट नोबल को तपस्या, त्याग, परोपकार, परमार्थ की अग्नि में तपाकर स्वर्णाभूषण सदृश भगिनी निवेदिता के रूप में प्रतिष्ठापित किया। 'निवेदिता के रचनाकार : स्वामी विवेकानन्द' आलेख में राजलक्ष्मी वर्मा ने स्वामीजी को ऐसे सदगुरु के रूप में निरूपित किया है, जो यथार्थ तत्त्व के ग्रहण के लिये शिष्य की प्रज्ञा ज्योति का विस्तार करते हैं। तदनन्तर मन को ऊहापोह की क्रिया के लिए समर्थ बनाते हैं और इसलिए शिष्य का मन अन्ततोगत्वा एक निश्चित तत्त्व को प्राप्त करता है। जैसा कि राजशेखर आचार्य काव्यमीमांसा में लिखते हैं –

प्रथयति पुरः प्रज्ञाज्योतिर्यथार्थ परिग्रहे
तदनु जनयुत्यूहापोह क्रियाविशदं मनः।
अभिनिविशते तस्मात्तत्त्वं तदेकमुखोदयं
सह परिचयो विद्या वृद्धैः क्रमादमृतायते।।

– ऐसे सद्गुरु का सन्निकर्ष शिष्योत्कर्ष का प्रमुख कारण है, जो जीवन को अमृत तुल्य बना देता है।

स्वामी यतीश्वरानन्द के लेख 'भगिनी निवेदिता' में उनके मार्गरेट नोबल से भगिनी निवेदिता तक की आध्यात्मिक जीवनयात्रा का कुशल संयोजन किया गया है। उनकी यह यात्रा सत्यान्वेषी गहन विचारिका के रूप में प्रारम्भ होकर स्वामीजी की कल्पनाओं को पूरा करनेवाली भारत के लोककल्याणार्थ प्राणार्पण करनेवाली ब्रह्मचारिणी पर समाप्त होती है। इस यात्रा में उन्होंने स्वामीजी से तत्त्वज्ञान प्राप्त करते हुए वैचारिक मतभेदों को समाप्त कर भारत की नारीशक्ति को सुदृढ़ करने के लिए अनेक कार्य किए।

दिनेश चन्द्र सेन के लेख 'निवेदिता की भारत भक्ति तथा नि:स्वार्थता' में उन्होंने भगिनी निवेदिता से सम्बन्धित संस्मरण प्रस्तुत किए हैं, जो उनकी भारत भक्ति और निष्काम भावना के परिचायक हैं। भगिनी एक कुशल लेखिका हैं, जो प्रतिकूल

विचारधारा को किसी भी मूल्य पर स्वीकार नहीं करतीं तथा उनका प्रमाणिक खण्डन प्रस्तुत करती हैं। वे हिन्दू धर्म को धारण नहीं करतीं, अपितु आत्मसात् करती हैं। उनका चिन्तन सामान्य से ऊपर है। स्वामी प्रपत्त्यानन्द के लेख 'भारतीय प्राण-वीणा की झंकृति : तपस्विनी निवेदिता' में उनकी तपस्या को उद्भाषित किया गया है। भारत का प्राणतत्त्व धर्म है। जिसके विषय में महाभारतकार लिखते हैं –

धारणाद्धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यः स्याद् धारण संयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।

भगिनी मनु उक्त धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध इन दस धर्मलक्षणों का अनुपालन करते हुए अपने तपोमय जीवन से स्वामीजी की संकल्पनाओं को चरितार्थ करने में अपना सर्वस्व भारत की सेवा के लिए समर्पित कर देती हैं। इस लेख में लेखक ने निवेदिता की स्वामीजी के प्रति अनन्त श्रद्धा और विश्वास के द्वारा उनका आशीर्वाद प्राप्त कर उनके कार्यों को पूर्ण करने का संकल्प वर्णित किया है, जो उनका एकमात्र धर्म बन गया था।

डॉ. सुरुचि पाण्डे का लेख 'भारतीय कला और राष्ट्र विचार : भगिनी निवेदिता का चिन्तन' भगिनी निवेदिता के भारतीय संस्कृति सभ्यता आदि के ज्ञान का परिचायक है। उक्त लेख के माध्यम से भगिनी का कला प्रेम और संस्कृति के प्रति लगाव परिलक्षित होता है। भगिनी का मानना है कि भारतीय नारियाँ दैनन्दिन कार्यों के माध्यम से हस्त, कृषक आदि कलाओं का समायोजन राष्ट्रोत्थान के लिए करती हैं। उन्हें चित्रकला का भी सूक्ष्म ज्ञान था, जो अनेक चित्रों के भावनात्मक चित्रण से प्रतिपादित होता है। स्वामी मेधजानन्द के लेख 'श्रीमाँ सारदा देवी और निवेदिता' में माँ सारदा और निवेदिता के मध्य होनेवाले अनेक प्रसंगों का चित्रात्मक वर्णन प्राप्त होता है, जो उनके अन्तः सम्बन्धों को परिभाषित करता है। माँ का पुत्री स्वरूप निवेदिता को स्वीकार करना, उसको 'खूकी' सम्बोधित करना, उसको भारतीय नारी के आचार-विचार आदि से परिचित कराना, पुत्रीवत् पालन करना, कन्या पाठशाला का शुभारम्भ एवं वात्सल्य भाव का भावुक चित्रपटल पाठक को वात्सल्य से ओतप्रोत कर देता है।

प्रो. सुचित्रा मित्र का लेख 'भगिनी निवेदिता की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ' में भगिनी निवेदिता के आध्यात्मिक ज्ञान के स्तर का वर्णन है। भगिनी को जन्म के पूर्व से ही संस्कारवशात् आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हुआ है, जिसकी आधारशिला मार्गरेट नोबल की माँ ने जन्म के उपरान्त अपनी पुत्री को प्रभु ईश्वर की सेवा में समर्पित कर स्थापित की, जिस पर भव्य अध्यात्म प्रासाद का निर्माण स्वामी विवेकानन्दजी ने किया।

'भगिनी निवेदिता का भारत प्रेम' लेख में लेखक ओमप्रकाश वर्मा जी ने निवेदिता के हृदय में स्थित भारतप्रेम को अपने शब्दों के माध्यम से अंकुरित करने का प्रयास किया है। निवेदिता सत्य, ज्ञान की प्राप्ति हेतु प्रारम्भ से ही उत्सुक रहीं, किन्तु वह सत्यज्ञान रूपी लता स्वामीजी के आश्रय को पाकर पल्लवित और पुष्पित हुई।

निवेदिता द्वारा लिखित 'हमारे गुरुदेव और उनका सन्देश' लेख में स्वामीजी को उस परिव्राजक के रूप में चित्रित किया है, जिन्होंने सनातन धर्म को पुनः विश्व पटल पर प्रतिष्ठापित किया, हिन्दू धर्म के वास्तविक स्वरूप से परिचित कराया। स्वामीजी कृष्ण-बुद्ध और शंकराचार्य के सदृश हैं, जिन्होंने वेद, उपनिषद आदि के उद्धरणों से अपनी वाणी को परिपूर्ण बनाया तथा वैदिक वाङ्मय में निहित गूढ़ ज्ञान के वास्तविक अर्थ से समग्र संसार को सरल, सहज, सुबोध, स्पष्ट, सुसंगत तथ्यात्मक, अद्यतनीय रीति से परिचित कराया।

उनके द्वितीय लेख 'स्वामी विवेकानन्द के जीवन और कार्य का राष्ट्रीय महत्त्व' में स्वामीजी का ध्येय मनुष्य-निर्माण को बताया गया है, वे कभी गुरु, कभी पिता, कभी स्कूल के शिक्षक की तरह मनुष्य का निर्माण करते ही रहते थे। उनका समग्र चिन्तन और जीवन राष्ट्रोत्थान के लिए समर्पित था। उनके लिए यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा –

भारताय चिन्तनं भारताय सेवनम्।
भारताय जीवनं भारताय अर्पणम्।।
राष्ट्रहितसाधनाय राष्ट्रधर्मस्थापनाय।
श्रद्धया करोम्यहं जीवनं समर्पणम्।।

'शिव और बुद्ध' लेख में शिव के शिवत्व को अन्यान्य पौराणिक आख्यानों से उद्भासित किया गया है। निवेदिता की मान्यता है कि शिव प्रकृति स्वरूप हैं, जो परमार्थ हेतु कालकूट विष को भी कण्ठ में धारण करके नीलकण्ठ स्वरूप हैं। बुद्ध-यशोधरा आख्यान द्वारा उन्होंने मोहात्मक जगत की नश्वरता को अभिलक्ष्य कर बुद्ध चरित को निरूपित किया है, जिसमें ज्ञान प्राप्त्यर्थ गौतम सुखोपभोग का त्यागकर वन में तपस्या करते हैं।

इस प्रकार ग्रन्थ के समग्र पर्यालोचन से ज्ञात होता है कि निवेदिता की आत्मा पर भारतीयता की अमिट छाप थी। आवरण पृष्ठ पर निवेदिता के दोनों चित्र सुन्दर हैं। ग्रन्थ के सम्पादक धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने हिन्दी समाज को ऐसी महीयसी नारी से अवगत कराया। पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है। ○○○

समीक्षक – डॉ. राघवेन्द्र शर्मा जी
प्राध्यापक, संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर स्वर्ण जयन्ती समारोह - २०१८

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर का रामकृष्ण मिशन में संविलयन का ५०वाँ वर्ष २५मार्च, २०१८ को पूर्ण हुआ। १९६८ में रामनवमी के दिन ही इस आश्रम का संविलयन रामकृष्ण मिशन में हुआ था। इसलिये आश्रम ने २५ मार्च, २०१८ को स्वर्ण जयन्ती समारोह मनाया। इस दिन आश्रम में प्रात: से लेकर रात्रि ९ बजे तक विविध कार्यक्रम आयोजित हुए।

प्रथम सत्र : आध्यात्मिक शिविर

प्रथम सत्र ९ से १२ तक चला। प्रात: नौ से एक बजे तक आध्यात्मिक शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें रायपुर, भिलाई, दुर्ग आदि स्थानों से ३०० भक्तों ने भाग लिया। शिविर में श्रीरामकृष्ण अष्टोत्तरशत नामार्चना के बाद रामकृष्ण मिशन, ग्वालियर के सचिव स्वामी राघवेन्द्रानन्द जी ने 'स्वामी विवेकानन्द और नर-नारायण सेवा', रामकृष्ण मिशन, इन्दौर के सचिव स्वामी निर्विकारानन्द जी ने 'श्रीरामकृष्ण देव और गृहस्थ भक्त' और स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने 'साधक जीवन कैसा हो?' विषय पर उत्कृष्ट प्रवचन दिये। स्वामी त्रैलोक्यानन्द जी ने भक्तों को नामावली और भजन सामूहिक रूप से गवाकर एक अद्भुत वातावरण बना दिया। अतिथियों का स्वागत आश्रम के सह-सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने किया, सत्र की अध्यक्षता स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने की।

दूसरा सत्र : भजनांजलि

१.४५ से २.३० तक रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विद्यापीठ, नारायणपुर के शिक्षक श्री एम, कुर्म ने बहुत सुन्दर भजनांजलि प्रस्तुत कर सभी शिविरार्थियों को मुग्ध कर दिया।

तृतीय सत्र : प्रवचन और स्मृतियाँ

यह सत्र २.३० से ५ बजे तक चला। इसमें रामकृष्ण मिशन, नारायणपुर आश्रम के सचिव स्वामी व्याप्तानन्द जी महाराज ने 'श्रीमाँ सारदा देवी और उनकी अभय वाणी' पर प्रवचन दिया। विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी ने 'विवेकानन्द आश्रम, रायपुर की स्मृतियाँ और 'मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम' पर व्याख्यान दिये और स्वामी आत्मानन्द जी से सम्बन्ति कई रोचक घटनाओं को सुनाया। इसी स्मृतिकथन शृंखला में पूर्व मन्त्री श्री लक्ष्मीनारायण इन्दुरिया जी ने आश्रम और स्वामी आत्मानन्द जी के जीवन की कई नैतिक, आध्यात्मिक और निडरता की प्रेरक घटनाओं को सुनाकर श्रोताओं को मुग्ध कर दिया। भक्तों ने शिविर-सम्बन्धी अनुभव सुनाये। भक्तों की जिज्ञासाओं का समाधान और इस सत्र की अध्यक्षता स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने की। धन्यवाद ज्ञापन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया।

चतुर्थ सत्र : श्रीरामनाम संकीर्तन और भजन

इस सत्र में श्रीरामकृष्ण मन्दिर में ५ बजे से ६१५ बजे तक श्रीरामनामसंकीर्तन और भजन हुये।

पंचम सत्र : सार्वजनिक सभा

यह सत्र ६.४५ से ७.३५ तक चला, जिसमें सार्वजनिक सभा हुई। विवेकानन्द विद्यार्थी भवन, रायपुर के छात्रों ने भजन प्रस्तुत किये। उसके बाद स्वामी निर्विकारानन्द ने 'श्रीमाँ सारदा देवी : जीवन और सन्देश' और स्वामी राघवेन्द्रानन्द जी ने श्रीरामकृष्ण : जीवन और सन्देश' पर व्याख्यान दिये।

सांस्कृतिक कार्यक्रम

यह सत्र ७.३० से ८.३५ तक चला। यह बड़ा महत्त्वपूर्ण आनन्ददायक सत्र रहा। इसमें रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर की छात्राओं ने 'छत्तीसगढ़ दर्शन' की झाँकी नृत्य द्वारा प्रस्तुत की। छत्तीसगढ़ की विभिन्न प्रथाओं, त्योहारों, उत्सवों और 'रामकृष्ण शरणम्' गीत की नृत्य प्रस्तुति ने सभी दर्शकों को विमुग्ध कर दिया। अन्त में स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने कलाकारों को शुभाशीर्वचन प्रदान किया। स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने धन्यवाद-ज्ञापन और संचालन स्वामी देवभावानन्द जी ने किया। सभी कार्यक्रमों में लगभग ३०० भक्त उपस्थित थे। ○○○